प्रकाशक

दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी

जयपुर जोधपुर

विषय-सूची

भूमिका

सौन्दर नन्द काव्य के लेखक बौद्ध उपदेशक, आचार्य और संन्यासी महाकवि अश्वघोष हैं। इस काव्य की दो ही प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ अब तक उपलब्ध हुई हैं। दोनों ही त्रुटिपूर्ण तथा हीनावस्था में संग्रहीत हैं। इनके आधार पर शुद्ध और कहीं कहीं पूर्ण पाठ निश्चित करना असम्भव सा है। सर्व प्रथम स्वर्गीय महा महोपाध्याय प० हर प्रसाद शास्त्री ने इन प्रतियों के आधार पर इस काव्य को सम्पादित करके १९१० ई० में प्रकाशित करवाया था। इसके पश्चात् यूरोप के अनेक सुयोग्य विद्वानों ने भी सफलता पूर्वक अनेक स्थलों के पाठों का संस्कार किया। सन् १९२८ ई० में मूलप्रतियों के आधार पर तथा मुद्रित संस्करण और टिप्पणियों में सुझाये पाठ सुधारों का उपयोग करते हुए स्वर्गीय डा० जॉन्स्टन ने इस काव्य का एक सुन्दर संस्करण निकाला। प्रस्तुत चतुर्थ सर्ग में इसी का अनुसरण किया गया है।

सौन्दर नन्द काव्य संस्कृत में लिखा गया है। इसमें बुद्धकथा का वर्णन है। बुद्ध की जीवनी और सिद्धान्त से सम्बन्धित अश्वघोष ने दो काव्य लिखे हैं, एक तो प्रस्तुत काव्यकृति और दूसरा बुद्ध-चरित। कवि के दोनों ही काव्य एक दूसरे के पूरक हैं। कपिलवस्तु का निर्माण, जिसका उल्लेख भी बुद्ध चरित में नहीं है, 'सौन्दर नन्द' के प्रथम सर्ग में विस्तारपूर्वक से वर्णित है। इसी भाँति यहाँ पर शाक्य वंश की उत्पत्ति भी बताई गई है। बुद्ध की धार्मिक जीवनी जो बुद्धचरित के प्रथम [illegible] सर्गों में लिखी गई है, सौन्दर नन्द के तीसरे सर्ग में संक्षेप रूप में दिया गया है। बुद्धचरित में नन्द की दीक्षा का उल्लेख मात्र है, किन्तु वह इस काव्य का [illegible] विषय है। 'सौन्दर नन्द' में [illegible] [illegible] सिद्धान्त का [illegible] है, किन्तु बुद्ध चरित के [illegible] सर्ग में वह [illegible] [illegible] है। 'सौन्दर नन्द' के

१६/१७ की दूसरी पक्ति में ससार के मिथ्या कारणों की गणना मात्र की गई है, किन्तु बुद्ध चरित के अष्टादशम सर्ग में इनकी विस्तृत व्याख्या है।

यद्यपि "सौंदर नद" का सम्बध बुद्ध कथा से है तथापि इसका वास्तविक विषय बुद्ध के मौसेरे और सौतेले भाई "सुन्दर" उपनामधारी अत्यन्त सुन्दर 'नन्द' का धर्म परिवर्तन है।

प्रस्तुत काव्य कपिल वस्तु की स्थापना के वर्णन से प्रारंभ होता है। जिसमें अश्वघोष को अपने वीरकथाओं और पुराण कथाओं के विशाल ज्ञान को प्रदर्शित करने का पर्याप्त अवसर उपलब्ध हुआ है। द्वितीय सर्ग में राजा शुद्धोदन का वर्णन है सर्वार्थ सिद्धि और उसके सौतेले भाई नन्द की कथा सूक्ष्मरूप से वर्णित है। तृतीय सर्ग में बुद्ध का विशद वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में नन्द की स्त्री रूपवती सुन्दरी के दिव्य सौन्दर्य का तथा उसके और नन्द के निशान्त न्द्र योग का वर्णन किया गया है। इसी मे तथागत के नन्द गृह से खाली हाथ लौट जाने पर तथा नन्द के द्वारा आवेमन से उनका अनुगमन करने का वर्णन है। सुन्दरी से नन्द की विदा का वर्णन नन्द की विदावेला की द्विविधा तथा उस युगल के प्रेमबन्धन का सफल चित्रण है। पचम सर्ग में बुद्ध शीघ्रत पूर्वक नन्द को बौद्ध भिक्षु के रूप में उसकी अनिच्छा होते हुए भी दीक्षित कर देते हैं। षष्ठ सर्ग में नन्द-जाया सुन्दरी का विलाप वर्णित है। सप्तम सर्ग में प्रियानुरक्त नन्द अनेक अनुरूप गाथाओं द्वारा प्राचीन नरपतियों द्वारा संन्यास त्याग कर गृहस्थ जीवन के आनन्दोपभोग का वर्णन करते हुए नन्द सुन्दरी के प्रति अपने लगाव का पोषण करता है। अष्टम सर्ग मे स्त्रियों के दोष उनके चाटु वचन और कलुषित हृदय का वर्णन करके नन्द के हृदय परिवर्तन का प्रयत्न किया जाता है। नवम सर्ग में प्राचीन वीरो के उदाहरण द्वारा नन्द को अहङ्कार के दोषों को बताया गया है किन्तु इस सब का उस पर कोई असर नहीं होता। दशम सर्ग में बुद्ध साहसपूर्ण विनियोजन के द्वारा नन्द को स्वर्ग में ले जाते हैं और मार्ग में उसे हिमालय प्रात में एक मद्दी

एकनेत्रा वानरी को दिखाकर उससे पूछते हैं कि क्या सुन्दरी इस वानरी से अधिक सुन्दर है। नन्द उत्साहपूर्वक अपनी पत्नी के प्रिय-दर्शित्व की स्थापना करता है। किन्तु स्वर्ग में अप्सराओं को देखकर वह मोहित हो जाता है और अप्सराओं को सुन्दरी से उतनी ही सुन्दर बतलाता है जितना कि वानरी से सुन्दरी और इस प्रकार अपनी [illegible] के शिथिल हो जाने पर एक अप्सरा से परिणय करना चाहता है। अप्सरा ऐसे ही नहीं प्राप्त हो सकती उसके लिए शुभकर्मों से स्वर्ग को प्राप्त करना आवश्यक है अतः नवम सर्ग में वह इस लक्ष्य के लिए उद्योग करता है किन्तु तथागत का शिष्य आनन्द उसे अनेक उदाहरण देकर उसको सचेत करता है कि स्वर्ग सुख अस्थायी है— पुण्यक्षीण होने पर वहाँ से पुनः पृथ्वी पर लौटना पड़ता है।

द्वादश सर्ग से अष्टादश सर्ग तक नन्द के हृदय परिवर्तन और उसके उद्धार की कथा है। अनुरोध करने पर नन्द का मन स्वर्ग के सुख से हट जाता है और वह बुद्ध से उपदेश ग्रहण करता है। वह केवल भिक्षु ही नहीं हो जाता और बुद्ध के निर्देश से केवल अपनी निर्वाण-प्राप्ति में ही नहीं लग जाता वरन सर्व साधारण को निर्वाण प्राप्ति के साधन का उपदेश करने लगता है।

सारांश हम कह सकते हैं कि सौतेले भाई होते हुए भी सिद्धार्थ और नन्द प्रारम्भ से ही भिन्न प्रकृति के थे। सिद्धार्थ बचपन से ही संसार से उदासीन थे और सत्य के प्रति जिज्ञासा भाव को पोषित किए हुए थे। स्वेच्छा से गृहत्याग करके उन्होंने अपने उद्योग से उदात्त एवं परम ज्ञान प्राप्त किया। दूसरी ओर नन्द प्रारम्भ से ही अनुरागी तथा कामासक्त थे। कामवासना के पंक में फँसे हुए नन्द का उद्धार करने के लिए बुद्ध एवं उनके शिष्य आनन्द आदि को जो [illegible] करना पड़ा उसी का वर्णन सौन्दरनन्द काव्य में है।

[illegible] सौन्दरनन्द का कथानक आधार के विचार से [illegible] के अनुरूप नहीं है। धर्म परिवर्तन की घटना का [illegible] विद्वान कथा

में निर्देश मात्र है। विषय के इतने सूक्ष्म होने पर भी अश्वघोष ने इस विषय को लेकर एक महाकाव्य की रचना की, यह उसकी कवित्व शक्ति और काव्य-रचना-कौशल का परिचायक है। काव्य के प्रारम्भिक भाग में उचित काव्य उपकरणों की सहायता से इस गाथा को बढाया गया है और उत्तर भाग में कवि ने अपनी धार्मिक धारणा एव विचार की काव्य मय अभिव्यक्ति की है। प्रथम छ सर्गों में कपिलवस्तु की स्थापना, इसके राजा, बुद्ध और नन्द का जन्म, नन्द का उसकी पत्नी सुन्दरी के प्रतिप्रेम नन्द का बाध्य होकर भिक्षुत्व ग्रहण, नन्द का अन्तर्द्वन्द्व और सुन्दरी का विलाप यह सब काव्य शैली मे अत्यन्त कौशल से वर्णित है और वर्णन सौन्दर्य से समलकृत है।

सौन्दरनन्द के उत्तर भाग में वर्णन और कथानक नन्द के स्वर्गारोहण और अप्सरासक्ति के अतिरिक्त अधिक मात्रा में कहीं भी नही हैं। इस काव्य कृति के अन्तिम त्रिभाग (सर्ग १३–१८) में सुलिलत वाणी में बुद्ध के धर्म का सुन्दर व्याख्यान किया गया है जिसका साराश अधो-लिखित है।

आर्य सत्य चार है— १ दु ख २ इसका कारण, ३ इसका विनाश और ४ दु ख-विनाश का मार्ग। दु ख जन्म और सासारिक प्रवृत्ति के साथ साथ है। यह दो प्रकार का है (१)शारीरिक (२) मानसिक। रोग, वार्धक्य, क्षुत्पिपासा, शीतोष्मा आदि शारीरिक व्याधियाँ हैं और शोक, अरति, क्रोध, भयादि मानसिक दुःख। इन दोनों प्रकार के दु खों का कारण जन्म है और तृष्णा आदि समूह जन्म का कारण है। तृष्णादि वर्ग को समूल नष्ट करके ही दु ख से मुक्ति हो सकती है। दु ख विनाश होने पर ही निर्वाण प्राप्ति हो सकती है। इसकी प्राप्ति के पश्चात् मनुष्य जन्म, जरा आधिव्याधि, अप्रिय-सयोग,प्रिय-वियोग, मृत्यु आदि से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। यह कल्याणकारी पद है जो नैष्ठिक और अक्षय है। यही अमृतपद है जो अष्टाङ्गक मार्ग का अनुसरण करने से प्राप्त होता है।

इस मार्ग के आठ अङ्ग हैं।

१ सम्यक् वाणी — अनृतं वदति न च कश्चि—

दतमपि जल्पति नाप्रिय ।

अकृत्यमपि च न वगार्हित

मितमप्युवाच न च पैशुनाय गत् ॥

२ सम्यक् कर्म — न जिहिंस सूक्ष्ममपि जन्तुमपि—

परव तोपजीविन ।

किं बत विपुल गुण सदा

मदा विभु मुनेरुपासया ॥

अकृशोपम दृश्यधनोऽपि

परपरिग्रामदोपि सन् ।

नान्य धनमपजहार तथा—

भुजगादिवान्यविमत्तादि विषै ॥

विभवान्वितोऽपि तरुणोऽपि

विषय चपलेन्द्रियोऽपिसन् ।

नैव च परयुवतीं गमनागम

हि ता दहनतोऽप्य मन्यत ॥

३. सम्यक् आजीविका — शुद्ध साधनों द्वारा जीवन यापन ।

४. सम्यक् दृष्टि — चार आर्य सत्यों का वास्तविक ज्ञान ।

५ सम्यक् चिन्तन — शुद्ध विचार ।

६. सम्यक् प्रयत्न — पाप विचारों का निरोध और सद्विचारों का पोषण ।

७. सम्यक् स्मृति — शारीरिक एवं मानसिक कार्यों के प्रति जागरूकता ।

८ सम्यक् समाधि — ध्यान, मानसिक एकाग्रता ।

प्रथम तीन शील कहलाते हैं । तीसरी उपस्थिति में दोषों (काम, क्रोध, मोह, लोभादिक दोषों) के [illegible] नहीं पाते सम्यक् दृष्टि विचार [illegible] ज्ञान के अन्तर्गत हैं । [illegible] और निर्वाण [illegible] है ; [illegible] समाधि [illegible] समाधि कहलाती हैं । [illegible] दोषों का निरोध करते हैं ।

उक्त अष्टाङ्ग मार्ग पर चलने के लिए ऋजुता, धैर्य, सारल्य, ह्री, प्रमादहीनता, एकान्त, अल्पेच्छता, सन्तोष, अनासक्ति, सांसारिक प्रवृत्ति में अरुचि और क्षमा की आवश्यकता होती है।—

अस्योपचारे धृतिरार्जवं चह्रीरप्रमादः प्रविविक्तताच ।
अल्पेच्छता तुष्टिरसंगता च लोकप्रवृत्तावरतिःक्षमाच ॥ (१६।३८)

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि दुःखमुक्ति की प्राप्ति के लिए सदाचार एवं आत्यन्तिक मन शुद्धि की परमावश्यकता है। योगाभ्यास भी इसी का नाम है। मानसिक एकाग्रता आदि के लिए जो शील, इन्द्रियसंयम परिमित भोजन, अल्पनिद्रा, एकान्तसेवन आदि उपायों का निर्देश किया गया है वह मुमुक्षु योगाभ्यासी व्यक्तियों के लिए तो आवश्यक हैं ही अपितु आधुनिक जीवन क्षेत्र में कर्मनिरत जनसाधारण के लिए भी उनका उपयोग है। षोडशम सर्ग के अन्तिम छः श्लोकों में उद्योग के सम्बन्ध में प्रेरणापूर्ण सुन्दर व्याख्यान है जिससे कोई भी सांसारिक व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है।—

द्रव्यं यथा स्यात्कटुकं रसेन तच्चोपयुक्तं मधुरं विपाके।
तथैव वीर्यं कटुकं श्रमेण तस्यार्थसिद्धयै मधुरो विपाकः
वीर्यं परं कार्यकृतो हि मूलं वीर्यादृते काचन नास्ति सिद्धिः।
उदेति वीर्यादिह सर्वसंपन्निर्वीर्यता चेत्सकलश्च पाप्मा ॥

अलब्धस्यालाभो नियतमुपलब्धस्य विगम—
स्तथैवात्मावज्ञा कृपणमधिकेभ्यः परिभवः।
तमो निस्तेजत्वं श्रुतिनियमतुष्टिव्युपरमो
नृणां निर्वीर्याणां भवति विनिपातश्च भवति ॥
नयं श्रुत्वा शक्तो यदयमभिवृद्धिं न लभते।
परं धर्मं ज्ञात्वा यदुपरि निवासं न लभते।
गृहं त्यक्त्वा मुक्तो यदयमुपशान्तिं न लभते।
निमित्तं कौसीद्यं भवति पुरुषस्यात्रनरिपुः ॥

अतिः—दोलायां यदि रमति गां वारि लभन् ।
मथनं व्यामथ्नन् ज्वलनमरणिभ्यां जनयति ।
प्रयुक्ता योगे तु प्रतिवधुपशमन्ते शमफल ।
स्तुत निन्द यान्यो गिरिमपि हि भिन्दन्ति सरित ॥
दृष्ट्वा गां परिपाल्य च क्रमगतैरश्नोति सस्यश्रिये ;
यत्नेन प्रतिगात्यमानरजत रत्नश्रिया कांक्षति ।
सप्तग्रामवपुष्य कार्यसिद्धिभिर्युक्तो नरेन्द्रश्रिय
तद्वीर्यं कुरु शातये विनिगत योद्धि सर्वार्थप ॥

जिस प्रकार द्रव्य विशेष का रस कड़वा होता है और उसका उपयोग करने पर मीठा फल मिलता है इसी प्रकार भवाटवी के कारण उद्योग कष्ट (कष्टप्रद और अप्रिय) होता है, किन्तु लक्ष्य की सिद्धि होजाने पर मीठा फल मिलता है ।

कार्य की सफलता का मूल कारण है उत्तम उद्योग, उद्योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं होती है, उद्योग से ही सब समृद्धियों का उदय होता है, और जहां उद्योग नहीं है वहां पाप ही पाप है ।

अनुद्योगी मनुष्यों को निश्चय ही अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति नहीं होती है और उनकी प्राप्त वस्तुओं का भी नाश हो जाता है, उनका आदर सम्मान चला जाता है, वे दीन हीन हो जाते हैं, बलवानों से अपमानित होते हैं, मानसिक कष्टभार में रहते हैं, उनका तेज क्षीण हो जाता है, विद्या, संयम और संतोष नष्ट हो जाता है (सब अर्थ में) उनका पतन हो जाता है ।

उद्योगहीन मनुष्य उपाय पूर्वक अपनी उन्नति को नहीं करता है, उत्तम धर्म पूर्वक उच्च का निवास (उच्च पद) को नहीं प्राप्त करता है, और मुक्ति के लिए पर लोक में शान्ति लाभ को नहीं करता है, इसका कारण उसका अपना ही आलस्य है न कि (कोई कारण) अन्य ।

उद्योग किये बिना वृक्षों को तोड़ने वाला पवन जल प्राप्त करता है, कवियों की लगातार ... ध्वनि उत्पन्न करता है,—

योगाभ्यासी पुरुष अवश्य अपने परिश्रम का फल प्राप्त करते हैं और निरन्तर द्रुतगति से बहने वाली नदियाँ पर्वत को भी फोड़ती हैं।

भूमि को जोतकर और अत्यन्त परिश्रम-पूर्वक (खेत की) रखवाली कर मनुष्य उत्तम शस्य प्राप्त करता है, प्रयत्न पूर्वक समुद्र के जल में प्रविष्ट होकर वह उत्तम रत्न-राशि से क्रीड़ा करता है, तीरों से शत्रुओं के उद्योग को निष्फल कर वह राज-लक्ष्मी का उपभोग करता है, अत. शान्ति प्राप्त करने के लिए उद्योग करो क्योंकि उद्योग में ही सब समृद्धियों का निवास है।"

इस प्रकार नन्द ने बुद्ध के उपदेश सुनकर आचरण किया और क्लेशों पर विजय प्राप्त की। ध्यान करके अर्हत्व (जीवन्मुक्ति) प्राप्त किया। उनको औत्सुक्य भय, आशा शोक, मद, स्नेह और राग से मुक्ति मिली, द्वन्द्वातीतत्व की स्थिति प्राप्त की उन्होंने अत्यन्त आनन्द और परम शान्ति का अनुभव किया। कृतकृत्य होकर जब उन्होंने गुरु बुद्ध से प्रत्युपकार का उपाय पूछा तो गुरु ने बताया —

इहोत्तमेभ्योऽपि मत. स तूत्तमो य उत्तम धर्ममवाप्यनैष्ठिक।
अचिन्तयित्वात्मगत परिश्रम शम परेभ्योप्युपदेष्टुमिच्छति॥
विहाय तस्मादिह कार्यमात्मनः कुरुस्थिरात्मन्परकार्यमप्यथो।
भ्रमत्सु सत्वेषु तमोवृतात्मसुश्रुतप्रदीपो निशि धार्यतामयम्॥

वही मनुष्य उत्तम है, जो अपने परिश्रम की चिन्ता न करता हुआ दूसरों को भी शम धर्म (शान्ति) का उपदेश देता है। अतएव हे स्थिरात्मन्, अपना कार्य छोड़कर दूसरों का भी कार्य करो। अज्ञानतिमिराच्छन्न प्राणियों के समूह में इस ज्ञान प्रदीप को धारण करो"

चतुर्थ सर्ग का कथानक —"सौन्दरनन्द" महाकाव्य के इस सर्ग का नाम "भार्यायाचितक" (पत्नी की अनुमति) है। इसमें नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी के पारस्परिक राग का वर्णन करते हुए तथा बुद्ध के प्रभाव के कारण नन्द और सुन्दरी के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करके महाकवि ने नन्द के मोक्ष-मार्ग में प्रवृत्त होने के प्रथम सोपान को अपनी भाव समृद्धि तथा काव्य

किया है। यह काव्य विदर्भ शैली में लिखा गया है। 'बाण' के अनुसार इस शैली का उद्देश्य काव्य विषय का पूर्ण अभिव्यञ्जन है, परवर्ती कवियों की भाँति अलङ्कार ही नहीं है। अश्वघोष का उद्देश्य सर्व साधारण में त्याग और वैराग्य का सदेश पहुँचाना था तथा बुद्ध धर्म का प्रचार करना था। सर्व साधारण पाण्डित्य की सराहना करने में असमर्थ होता है। अत अश्वघोष ने कथा, वर्णन, उपदेश के लिए ऋजु काव्यशैली का सहारा लिया है। यह शैली स्पष्टतया, स्फुटता, और शालीनता से सम्पन्न है। परवर्ती और किसी अ श तक पूर्ववर्ती काव्यों की तुलना में भी अश्वघोष की शैली आकर्षक एव सरल है। इसमें कृत्रिमता की अपेक्षा स्वाभाविकता की मात्रा अधिक है जो सीधी हृदय को प्रभावित करती है। कालिदास की अपेक्षा भी अश्वघोष की शैली सरल है। छोटे छोटे समास हैं जिससे विग्रह करने का अधिक कष्ट नहीं होता। चार शब्दों से अधिक के समास अत्यल्प सख्या में हैं। कहीं कहीं तो समास है ही नहीं। कवि ने उपमाओं के सहारे ही जटिलतम बौद्ध सिद्धान्तों को अद्भुत सरलता एव स्पष्टता से समझाया गया है। यथा.—

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्ष।
दिश न कांचिद्विदिश न कांचित्स्नेह क्षयात्केवलमेति शान्तिम ॥
एव कृती निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्ष।
दिश न कांचिद्विदिश न कांचि त्क्लेशक्षयात्केवलेमति शान्तिम् ॥
(सौ १६/२८–२९)

उन्होंने सस्कृत और पाली साहित्य, लोकजीवन और उपमाओं का चुनाव किया है। सामान्यत उनकी उपमायें सुन्दर और उपयुक्त है। उपमा के अतिरिक्त अश्वघोष ने 'दीपक' अलङ्कार का भी अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है। यथा —

अवेदीद्बुद्धिशास्त्राभ्यामिह चामुत्र चैक्षम।
अरक्षीद्धैर्य वीर्याभ्यामिन्द्रियाण्यपि च प्रजा ॥
(सौ २/१५)

और भी अनेक अलङ्कारों का उपयोग मिलता है। किन्तु कालिदास ने जिस अर्थान्तरन्यास का स्थान स्थान पर प्रयोग किया है वह अश्वघोष की रचनाओं में ढूंढने से ही मिल सकता है।

"सौन्दरनन्द" में अनेक प्रकार के 'यमक' के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। चतुर्थ सर्ग में ही अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यथा —

छातोदरीं पीनपयोधरोरु स सुन्दरीं रुक्मदरीमिवाद्रे· ।
काङ्क्षेण पश्यन्न ततर्प नन्द· पिबन्निवैकेण जलकरेण ॥
तत क्रमेदीर्वतमै· प्रचक्रमे कथनुयातो न गुरुर्भवेदिति ।
स्त्रजेय तां चैव विशेषकप्रियां कथं प्रियामार्द्रविशेषकामिति ॥

६/४९ तथा १०/५६–५७ के प्रत्येक पाद मे यमक है। कहीं कहीं तो सम्पूर्ण श्लोक की ही आवृत्ति हुई है। जैसे पूर्व उद्धृत सौन्दरनन्द के १६ सर्ग के २८–२९ वें श्लोकों में।

'सौन्दरनन्द' में अनेक प्रकार के छन्द व्यवहृत किये गये हैं। कुल १०६३ पद्यों में से ३८४ श्लोक और ४५९ उपजाति छन्द हैं। वंशस्थ, शिखरिणी आदि अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया है। विद्वानों का मत है कि सप्तम सर्ग का अन्तिम पद्य (जो नीचे उद्धृत है) 'मन्दाक्रान्ता' का पूर्वरूप है। इसी का उपयोग करके कालिदास और हरिषेण या महाकवि कालदास या दोनों ने ही अलग अलग 'मन्दाक्रांता' का आविष्कार किया होगा। —

तस्माद्धित्वार्थं मम गुरुरितो यावदेव प्रयात–
स्त्यक्त्वा काषाय गृहमहमित स्तावदेव प्रयास्ये ।
पूज्य लिङ्ग हि स्खलित मनसो बिभ्रत क्लिष्टबुद्धे–
र्नामुत्रार्थः स्यादुपहतमतेर्नाप्यय जीवलोक· ।

चतुर्थ सर्ग में उपजाति छन्द है। महाकाव्य के नियम के अनुसार अंत में छन्द परिवर्तन किया गया है।

सामान्यत अश्वघोष ने व्याकरण के नियमों का पालन किया है। सौन्दरनन्द के बारहवें सर्ग के नवम दशम पद्य में उपमा द्वारा व्याकरण के नियमों का उल्लेख किया गया है—

बभूव स हि संवेग श्रयसस्तस्य वृद्धये।
धातुरेधिरिवाख्याते पठितोऽक्षर चिन्तकै
नतु कामान्मनस्तस्य केन चिज्जगृहे धृति
त्रिषुकालेषु सर्वेषु निपातोऽस्तिरिव स्मृतः

उक्त दशम श्लोक में लिखित नियम पाणिनि के व्याकरण में नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि अश्वघोष ने भी सौन्दरनन्द में यत्र-तत्र काव्य के माध्यम द्वारा व्याकरण की शिक्षा दी है। द्वितीय सर्ग में "लुङ्" का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। छठे सर्ग के अकेले चौतीसवें श्लोक में 'लिट्' के बारह रूप दिये गये हैं। श्लोक नीचे उद्धृत है—

रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ।
चकार रोप विचकार माल्य चकर्त वक्त्र विचकर्ष वस्त्रम्॥

दशम सर्ग के प्रथम श्लोक में अनेक मन्नन्त प्रयोग हुए हैं। समापिका किया के भी प्रचुर प्रयोग मिलते हैं। भूतकाल के लिए 'लट्' 'लुङ्' और 'लिट्' के प्रयोग में कोई अन्तर नहीं किया गया है। सारी पुस्तक में 'लिट्' का चारसौ साठ बार 'लुङ्' का ११८ बार एवं 'लङ्' का ३८ बार प्रयोग हुआ है। कारक विभक्ति समास, क्रिया आदि के प्रयोग में अनेक स्थलों पर व्याकरण सम्मत प्रयोग से भिन्नता पाई जाती है। हो सकता है इसका कारण पाठदोष ही हो, किन्तु इसका समर्थन रामायण और महाभारत में भी मिलता में है। संज्ञाओं के भी कुछ विचित्र भेद मिलते हैं। 'वर्प' 'प्रकोष्ठ' 'नपुंसक लिङ्ग' तथा 'मित्र' पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त हुए हैं। 'मैत्र' या 'मैत्री' के स्थान मे 'मैत्रा' शब्द का प्रयोग किया गया है।

सौन्दरनन्द की तिथि के विषय में अनेक मत हैं, जिनमें दो मुख्य हैं। एक मत के अनुसार रचना-कौशल की दृष्टि से सौन्दरनन्द बुद्धचरित का परवर्ती प्रतीत होता है। क्योंकि काव्य कला की दृष्टि से सौन्दरनन्द बुद्धचरित से सुन्दर है। यह कवि की प्रौढ रचना है। अत सम्भवत यह बुद्धचरित से पीछे लिखा गया है। दूसरा मत कीथ का है जिसके अनुसार सौन्दरनन्द को बुद्धचरित का पूर्ववर्ती माना गया है। सौन्दरनन्द के अन्त में कवि ने

स्पष्ट घोषणा की है कि चूंकि जन साधारण संसार सुख में अधिक आनंद लेते हैं और मोक्ष की परवाह नहीं करते इसलिए उसने धार्मिक तथ्यों को काव्य का बाना पहना कर उपस्थित किया है। चूंकि यहाँ पर उसने इस प्रकार के किसी पूर्ववर्ती काव्य का उल्लेख नहीं किया है। अतः यह उसकी पहली ही रचना प्रतीत होती है। इन दोनों मतों में प्रथम मत ही तर्क सम्मत प्रतीत होता है।

अश्वघोष की तिथि के विषय में हम इदमित्थं कुछ नहीं कह सकते। बाह्य एवं अन्त साक्ष्य के आधार पर इतना अवश्य विदित होता है कि वे कवि, उपदेशक, आचार्य, और सन्यासी थे, और साकेत के निवासी थे। सौन्दरनन्द के अन्त में निम्नलिखित वाक्य इस कथन के प्रमाण स्वरूप उद्धृत किया जाता है, "आर्य सुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्यभिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिन कृतिरियम्"। किंवदन्ती है कि इनका जन्म ब्राह्मण कुल में ही हुआ था और आरम्भ में उनको ब्राह्मण धर्म की ही शिक्षा-दीक्षा भी मिली थी। सौन्दरनन्द के अठारवें सर्ग के ५८ वें श्लो के द्वितीयार्धो श—

"अहो बताश्चर्यमिदं विमुक्तये करोति रागी यदय कथामिति" को देख कर हम कह सकते हैं कि अपने आरंभिक जीवन में अश्वघोष विषय-भोगासक्त रहे होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने बाद में बौद्धधर्म की दीक्षा ली और सन्यासी होगये। यही कारण है कि धर्मदीक्षा का विषय उन्हें अत्यन्त प्रिय था उनकी अन्य कृति "शारिपुत्र प्रकरण' का विषय भी धर्मदीक्षा ही है। वे मध्य देश में भ्रमण करते हुए धर्मोपदेश करते थे और इसी निमित्त इन्होंने काव्यरचना की।

चूंकि आरम्भ में उन्हें ब्राह्मणधर्म की शिक्षा-दीक्षा मिली थी अतः उनकी रचनाओं पर रामायण महाभारत का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्हें अन्य शास्त्रों का भी पर्याप्त ज्ञान था। उनकी रचनायें कामशास्त्र, राजशास्त्र, दण्डनीति सांख्ययोग आदि से प्रभावित हैं। वे काव्य व्याकरण और छन्द शास्त्र में पर्याप्त मात्रा में निष्णात थे। बौद्ध धर्म की दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया और बुद्ध के मौलिक उपदेशों को आत्मसात्

किया। वे स्थविरवादी और हीनयानी थे। हीनयान के अन्तर्गत सर्वास्तिवादी या सौत्रान्तिक थे। उनका आदर्श अर्हत् (जीवन्मुक्त) था। कीथ का कथन है कि उन्होंने पहले बौद्धमत के सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय को ग्रहण किया किन्तु पीछे महायान मत के अग्रणी बन गये।

अश्वघोष कालिदास और भास के पूर्ववर्ती थे। ये सर्व प्रथम महाकाव्य रचयिता थे। इन्होंने बुद्धचरित के अंतिम सर्ग में अशोक के धर्मानुराग का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि वे अशोक (२६५–२११ ई०-पू०) के बाद हुए होंगे। उनके इसी ग्रन्थ का चीनी अनुवाद पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ था अतः वे इस से पूर्व हुए होंगे। परम्परानुसार उन्हें कनिष्क का उपजीव्य माना जाता है। कुछ भी हो वे आज से प्रायः दो हजार वर्ष पहले हुए थे। डा० लाहा के अनुसार भी अश्वघोष को प्रथम शताब्दी पूर्व रखना उचित है। रचनाशैली के आधार पर भी यही मत सही प्रतीत होता है।

काव्य विकास की दृष्टि से अश्वघोष वाल्मीकि के बाद और कालिदास के पहले आते हैं। काव्य में वाल्मीकि के ऋणी हैं तो कालिदास उनका ऋणी है। अश्वघोष ने अपनी कृतियों में वाल्मीकि को आदिकवि और श्रीमान कहकर संबोधित किया है और इस प्रकार उनके प्रति आदर का भाव व्यक्त किया है। 'बुद्धचरित' में रामायण की कथा से उदाहरण लिए गये हैं। भाव, भाषा, उपमाओं और अन्य अलङ्कारों में अश्वघोष की रचनाओं पर "रामायण" का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है "सौन्दरनन्द" की कथा भी रामायण की कथा की भाँति ही ग्रथित की गई है। किन्तु अश्वघोष में नवीनता के दर्शन भी होते हैं। इस नवीनता का विकास इनके परवर्ती काव्यों में हुआ है। "रामायण" के श्लोक अर्थ और व्याकरण की दृष्टि से एक दूसरे से संयुक्त हैं, परन्तु अश्वघोष के श्लोक प्राय इस दृष्टि से पृथक इकाई के रूप में हैं। इनमें छन्दों की विविधता दूसरी नवीनता है। इसका कारण सम्भवत इनके पूर्ववर्ती वे काव्य हैं जो उनके समय में रहे होंगे और पीछे लुप्त होगये।

अश्वघोष और कालिदास की कृतियों में कितनी ही समान और समनार्थक शब्दावलियाँ और पंक्तियाँ मिलती हैं। इनमें से सम्भवत कुछ कालिदास की सूझ हैं, कुछ को जानकर या अनजान में लिया गया है और कुछ कालक्रम से लुप्त मध्यवर्ती काव्यों से ली गई होंगी। अत हम कह सकते हैं बहुत सी समानताओं के सम्बन्ध में कालिदास अपने इस पूर्ववर्ती कवि के ऋणी हैं अश्वघोष और कालिदास की समानताओं की तालिका नीचे उद्धृत की जाती है।—

अश्वघोष	कालिदास
तां सुन्दरीं चेन्न लभते नन्द सा वा निषेवेत न तं नतभ्रू । द्वद्वं ध्रुवं तद्विकलं न शोभे— तान्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ ॥ सौ०—४/७	परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् । अस्मिन्द्वये रूप । विधान यत्न पत्यु प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ॥ कुमा ७/६६
त गौरवं बुद्धगत चकर्ष भार्यानुराग पुनराचकर्ष । सोऽनिश्चयान्नापि ययौनतस्थौ तरस्तरंगेष्विव राजहस ॥ सौ. ४/४२	मार्गाचल व्यक्तिकरा— कुलितेव सिन्धु । शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥ कुमा. ५/८५
हतत्विषोन्या शिथिला सभाहव स्त्रियो विषादेन विचेतना इव ॥ बु च. ८/२५	निशीथदीपा सहसा हतत्विषो बभूवुरालेख्य समर्पिता इव ॥ रघु ३/१५
आदित्यपूर्व विपुल कुलते । नव वयो दीप्तमिदं वपुश्च ॥ बु. च १०/२३	एकातपत्र जगत प्रभुत्वं । नव वय कान्तमिद वपुश्च ॥ रघु. २/४७
मोक्ष श्रम नार्हति मार कर्तुम् । बु च. १३/५७	अल महीपाल तव श्रमेण । रघु २/३४
प्रमदामनागतिर्न विद्यते । सौ ८/४४	मनोरथानामगतिर्न विद्यते । कुमा. ५/६४

कालिदासेतर कवियों ने भी अश्वघोष पद्य अपनी रचनाओं में उद्धृत किए हैं । बाण ने उनसे उपमायें ग्रहण की हैं और मातृचेट और आर्यशूर भी इस कवि से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । नीचे की तालिका से उपनिषद् और "सौन्दरनन्द" की समानता लक्षित हो सकेगी —

उपनिषद्	सौन्दरनन्द
कालस्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम । सयोग एषां न त्वात्मभावात् आत्माप्यनीश सुखदुःखहेतो ॥ —श्वेताश्वतर उप १/२	प्रवृत्ति दुःखस्य च तस्य लोके तृष्णादयो दोषगणा निमित्तम् । नैवेश्वरो न प्रकृतिर्न कालो नापि स्वभावो न विधिर्यदृच्छा ॥ सौ १६/१७
स यदा शकुनि सूत्रेण प्रबद्धो दिश दिश पतित्वान्यत्रायतनम— लब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत । छा ३०/	सूत्रेण बद्धोहि यथा विहङ्गो व्यावर्तते दूरगतोऽपि भूय । अज्ञानसूत्रेण तथावबद्धो गतोऽपिदूर पुनरेति लोक ॥ सौ ११/६

"भगवद्गीता" से भी अश्वघोष प्रभावित हैं । भगवद्गीता में १८ अध्याय हैं तो सौन्दरनन्द में १८ सर्ग हैं । गीता में जिस प्रकार कर्तव्यपथ से विचलित अर्जुन को श्रीकृष्ण अपने उपदेश द्वारा सीधे मार्ग पर लाये हैं तो "सौन्दरनन्द" में बुद्ध ने कुमार्ग में प्रवृत्त नद को सत्पथ का पथिक बनाया है । दोनों में ही गुरु शिष्य सवाद हैं और शिष्य गुरु का भक्त और शरणागत है । सौन्दरनन्द के "कर्मयोग" 'अभ्यासयोग," "इन्द्रीयाणीन्द्रियार्थेभ्य" पद अश्वघोष पर गीता का प्रभाव स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं । सौन्दरनद के १४ वें सर्ग के अधिकांश भाग में गीता के अधोलिखित दो श्लोकों की विस्तृत व्याख्या की गई है —

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नत ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

युक्ताहार विहाराय युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नाव बोद्धस्य योगी भवति दु खहा ॥

उक्त समान सादृश्य, समानता तथा समानार्थकता का कारण अश्वघोष की आरम्भिक शिक्षा दीक्षा है । किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि उन्होंने अपने काव्यों में किसी बौद्धेतर धर्म का व्याख्यान किया है । अपनी शिक्षा दीक्षा का तथा पाण्डित्य और सस्कार का प्रभाव तो रहता ही है और वैसे भी बौद्धधर्म भिन्न जातीय नहीं है ।

जैसा कि ऊपर प्रकट किया जा चुका है सौन्दरनन्द काव्य सर्वसाधारण के लिए लिखा गया है और इसमें सर्वसाधारण की मान्यताओं, मनोविकारों, रुचि आदि का पर्याप्त ध्यान रखा गया है । इसमें कवि पाठक को प्रेय से श्रेय की ओर प्रेय मार्ग द्वारा लेजाना चाहता है । विधाता ने इन्द्रियों की वहिर्मुख प्रवृत्ति रची है इसी को लक्ष्य करके अश्वघोष ने सौन्दरनन्द में लालित्य का वर्णन है । अत इस काव्य को और विशेषत चतुर्थ सर्ग को पढते समय काव्य के अंतिम श्लोक (जो नीचे दिया गया है) का अवश्य ध्यान रखना चाहिये ।

प्रायेणा लोक्य लोक विषयरतिपर मोक्षात्प्रतिहत
काव्यव्याजेन तत्व कथितमिह मया मोक्षः परमिति ।
तद्बुद्ध्वा शामिक यत्तदवहितमितो ग्राह्य न ललित
पांसुभ्यो धातुजेभ्यो नियतमुपकर चामीकरमिति ॥

सौ. १८/६४

ससार को प्राय विषयानन्द में लिप्त एवं मोक्ष से पराङ्मुख देखकर मोक्ष को ही सर्वोपरि समझ कर मैंने इसमें तत्व का उपदेश किया है । ऐसा समझ कर सावधानतया इसमें से शान्तिदायक वस्तु को ही ग्रहण करना चाहिये न कि आनन्ददायक (ललित) वस्तु को क्योंकि लोग धातु के कणों में से उपयोगी सुवर्ण (कणों) को ही ग्रहण करते हैं ।

अश्वघोषप्रणीत-सौन्दरनन्दस्य

चतुर्थः सर्गः

(१)

मुनौ ब्रुवाणेऽपि तु तत्र धर्मं
धर्मं प्रति ज्ञातिषु चादृतेषु ।
प्रासादसंस्थो मदनैककार्यः
प्रियासहायो विजहार नन्दः ॥

अन्वय—तत्र मुनौ धर्मं ब्रुवाणेऽपि धर्मं च प्रति ज्ञातिषु आदृतेषु प्रासादसंस्थः मदनैककार्यः नन्दः प्रियासहायो विजहार ।

व्याख्या—तत्र कपिलवस्तुनाम्नि नगरे, मुनौ शाक्यमुनौ बुद्धे धर्मं ब्रुवाणे अपि कृतप्रचारे अपि, बौद्धधर्मं च प्रति ज्ञातिषु बान्धवेषु, आदृतेषु दर्शितसमादरेषु अपि, प्रासादसंस्थः राजभवनस्थः, मदनैककार्यः कामक्रियासक्तः, नन्द. बुद्धानुज, प्रियासहायः भार्यासहित, विजहार रेमे विहारं कृतवानित्यर्थ. । बुद्धे कृतधर्मप्रचारे सबन्धिभिः धर्मं प्रति दर्शितादरेष्वपि नन्द एव एकाकी स्वकीयभार्यया राजभवने कामक्रीडासक्त सन् विहारं कृतवान् ।

While the sage was busy preaching religion and his kinsmen had exhibited their reverence to the faith, Nanda absorbed in passions of love, continued staying in the palace and indulged in pleasures in company of his beloved.

वहा (कपिलवस्तु में) जब बुद्ध धर्म का उपदेश कर रहे थे और उनके बन्धु-बान्धव धर्म के प्रति श्रद्धा दिखा रहे थे, उस समय भी नन्द अपनी प्रियतमा के साथ महलों में रहकर बिहार कर रहा था ।

(२)

स चक्रवाक्येव हि चक्रवाकः
तया समेतः प्रियया प्रियार्हः ।
नाचिन्तयत् वैश्रमणं न शक्रं
तत्स्थानहेतोः कुत एव धर्मम् ॥

अन्वयः—चक्रवाक्या तया प्रियया समेतः स प्रियार्हः चक्रवाक इव वैश्रमणं शक्रं न अचिन्तयत्, तत्स्थानहेतोः धर्मं कुतः एव ।

व्याख्या—चक्रवाक्या तुल्यया तया स्वकीयप्रियया प्रियतमया, समेतः युक्तः चक्रवाकः रथाङ्गखगसमः, स प्रियार्हः प्रियासपूजितः नन्दः, वैश्रमणं कुबेरं, शक्रं इन्द्रं चापि न अचिन्तयत् न चिन्तितवान् । तत् स्थानहेतोः तदवस्थितिकारणभूतस्य धर्मं कुतः, धर्मस्य चिन्ता कुतस्तस्य । स्वकीयभार्यया समेतः नन्दः कुबेरेन्द्रादिकं कमपि देवं न चिन्तितवान्, तेषां देवानां प्रतिष्ठाहेतुकं धर्मं कुतः चिन्तयितुं तस्यावकाशः । धर्मस्य वार्ता तु दूरं एव अपासिता इत्यर्थः ।

Like a shel drake in company of Shel duck, he worthy of love with his beloved never thought of Kubera or Indra. How could he bear contemplate of the religion which bestowed that honour on them ?

चकवी के समान अपनी प्रियतमा के साथ उस चक्रवाक रूपी नन्द ने जो सर्वथा उस के योग्य था, न तो कुबेर की परवाह की और न कभी इन्द्र की । उनकी प्रतिष्ठा के कारण धर्म की तो बात ही छोड़िये ।

(३)

लक्ष्म्या च रूपेण च सुन्दरीति
स्तम्भेन गर्वेण च मानिनीति ।
दीप्त्या च मानेन च भामिनीति
यातो बभाषे त्रिविधेन नाम्ना ॥

अन्वयः—लक्ष्म्या च रूपेण सुन्दरी, स्तम्भेन गर्वेण च मानिनी, दीप्त्या मानेन च भामिनी, अतः त्रिविधेन नाम्ना या बभाषे ।

व्याख्या—लक्ष्म्या शरीरशोभया रूपेण लावण्येन च सुन्दरी, स्तम्भेन कृत्रिमरोषेण गर्वेण अभिमानेन मानिनी, दीप्त्या ओजस्वितया मानेन मनस्वितया च भामिनी या सुन्दरी नन्दपत्नी त्रिविधेन त्रिप्रकारेण नाम्ना अभिधानेन, बभाषे आहूता ज्ञाता वा आसीत् । विविधगुण-सम्पन्ना सा सुन्दरी त्रिभिरभिधानैः ख्यातासीत् ।

She was addressed by her three epithets Sundari because of charm and beauty, Manini because of arrogance and pride and Bhamini because of naughtiness and feign anger

अपने सौन्दर्य और रूप के कारण सुन्दरी, हठ और अभिमान के कारण मानिनी एवं ओज और मान के कारण भामिनी--इस प्रकार वो तीन नामों से पुकारी जाती थी ।

(४)

सा हासहंसा नयनद्विरेफा
पीनस्तनात्युन्नत पद्मकोशा ।
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन
स्त्री पद्मिनी नन्ददिवाकरेण ॥

अन्वय.—हासहंसा नयनद्विरेफा पीनस्तना अत्युन्नतपद्मकोशा सा स्त्री पद्मिनी स्वकुलोदितेन नन्ददिवाकरेण भूयो बभासे ।

व्याख्या—हंस इव धवलो हासः स्मयः यस्याः सा हासहंसा, नयने लोचने (द्विरेफः भ्रमरः तत्तुल्ये) यस्याः सा नयनद्विरेफा, पीनौ मांसलौ पुष्टौ वा स्तनौ कुचौ अत्युन्नतपद्मकोशसमौ कमलकोरकतुल्यौ यस्याः सा स्त्री पद्मिनी स्त्रीषु कमलिनीव सुन्दरी, स्वकुलोदितेन सूर्य-

वशोद्भवेन नन्दरूपेण दिवाकरेण भास्करेण भूया अत्यन्त बभासे अशोभत। यथा कमलिनी भास्करकिरणसम्पर्कमवाप्य विकसति तथैव सा मनोहरगात्रा सुन्दरी नन्दस्य संसर्गमवाप्याधिक शोभितवती।

With her swan-like smile bee like eyes and with high protruding breasts developed like lotus buds, she a lily amongst women appeared all the more charming while in company of Sun like Nanda, born in the solar line

हस के समान श्वेत मुसकानवाली, भ्रमर के समान काले लोचन-वाली, कमल कोश के समान उभरे हुए पुष्ट स्तनों वाली, वह स्त्रियों में कमलिनी समान सुन्दरी, सूर्यवश में उत्पन्न हुए उस नन्दरूपी सूर्य से बहुत शोभित हुई।

(५)

रूपेण चात्यतमनोहरेण
रूपानुरूपेण च चेष्टितेन।
मनुष्यलोके हि तदा बभूव
सा सुन्दरी स्त्रीषु नरेषु नन्दः॥

अन्वय—अत्यन्तमनोहरेण रूपेण, रूपानुरूपेण चेष्टितेन च तदा स्त्रीषु सा सुन्दरी नरेषु नन्द मनुष्यलोके बभूव।

व्याख्या — अत्यन्तमनोहरेण सर्वथाहृदयहारिणा स्वकीयेन रूपेण सौन्दर्येण, रूपानुरूपेण तद्रूपानुसारेण चेष्टितेन व्यवहारेण, तदा तस्मिन् काले स्त्रीषु सुन्दरी नरेषु च नन्दः मनुष्यलोके पृथिव्या अप्रतिमौ बभूव। स्वकीयेनात्यतमनोहारिणा सौन्दर्येण तदनुकूल-लीलाविलासेन च द्वावपि सुन्दरीनन्दौ लोके अप्रतिमौ अद्वितीयौ आस्तामित्यर्थः।

With their excessively charming beauty and their movements suiting the grace, Sundari among women and Nanda among males, both were peerless in the world of mortals.

अपने अत्यन्त आकर्षक रूप के कारण और तदनुकूल चेष्टाओं के कारण, स्त्रियों में सुन्दरी तथा पुरुषों में नन्द उस समय समस्त मनुष्यलोक में (अनुपम) थे।

(६)

सा देवता नन्दनचारिणीव
कुलस्य नन्दी जननश्चनन्द।
अतीत्य मर्त्याननुपेत्य देवान्
सृष्टावभूतामिव भूतधात्रा ॥

अन्वय—नन्दनचारिणीव सा देवता, कुलस्य नन्दी जनन नन्दश्च मर्त्यानतीत्य देवाननुपेत्य भूतधात्रा सृष्टौ अभूताम् इव।

व्याख्या—नन्दनमिन्द्रोपवनं तस्मिन् संचारिणी देवता सुरसुन्दरीव, कुलस्य स्ववंशस्य नन्दीजननः मोदप्रदायकः नन्दश्च, द्वावपि मर्त्यान् मानुषानतीत्य अतिशयानो देवान् अनुपेत्य अधस्तात् भूतधात्रा ब्रह्मणा सृष्टौ उत्पादितौ अभूताम् आस्ताम्। द्वावपि सुन्दरीनन्दौ देवमानुषयोः मध्यस्थाविव प्रजापतिना सृष्टौ समुत्पादिताविवा-शोभताम्।

She like a Goddess walking in celestial gardens and he delight of his family, were created by the creator as surpassing the mortals but remaining slightly lower to gods.

नन्दन वन में भ्रमण करने वाली सुरांगना के समान वह सुन्दरी और अपने वश को आनन्द देने वाला नन्द दोनों को ब्रह्मा ने मनुष्यों से ऊपर और देवों से कुछ नीचे उत्पन्न किया था।

(७)

ता सुन्दरी चेन्न लभेत नन्दः
सा वा निषेवेत न त नतभ्रूः ।
द्वन्द्व ध्रुव तद्विकल न शोभेत्
अन्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ ॥

अन्वयः—चेत् नन्द तां सुन्दरीं न लभेत सा वा नतभ्रूः त वा न निषेवेत, अन्योऽन्यहीनौ रात्रिचन्द्रौ इव विकल तद् द्वन्द्वं ध्रुवं न शोभेत्।

व्याख्या—चेत् यदि नन्दः ता सुन्दरीं न लभेत न प्राप्नुयात् सा वा नतभ्रूः आकुंचितभ्रूः त नन्द न निषेवेत न भजेत् समागच्छेत् वा, तदा ध्रुव निश्चयेन तद्विकल वियुक्त द्वन्द्व तथा न शोभेत यथा अन्योन्यहीनौ परस्पर वियुयुक्तौ रात्रिचन्द्रौ निशाशशाकौ न शोभेते न विलसत । तयोः समागमः सर्वथैव स्पृहणीय आसीदन्यथा वियुयुक्तौ तौ कदापि शोभा न धारयेताम् ।

If Nanda had been not united with that Sundari or she with arched eyebrows would have failed to obtain him, indeed that separated couple would not look happy as the night and moon when separated

यदि नन्द उस सुन्दरी को प्राप्त नहीं करता अथवा वह तिरछी भौंहों वाली उससे न मिल पाती तो निश्चय ही वह जोड़ा कभी शोभित न होता जैसे एक दूसरे के वियोग में रात्रि और चन्द्रमा शोभित नहीं होते ।

(८)

कन्दर्परत्योरिव लक्ष्यभूतं
प्रमोदनान्द्योरिव नीडभूतम्।
प्रहर्षं तुष्ट्योरिव पात्रभूतं
द्वन्द्वं सहारंस्त मदान्धभूतम् ॥

अन्वय:—कन्दर्परत्यो: इव लक्ष्यभूतं: प्रमोदनान्द्यो: इव नीडभूतं, प्रहर्षतुष्ट्यो: इव पात्रभूतं मदान्धभूतं द्वन्द्वं सह अरंस्त।

व्याख्या—कन्दर्पः अनग., अनंगरत्यो. लक्ष्यभूत आदर्शमिव, प्रमोदो विनोद. नान्दी आनन्द विनोदानन्दयोः कुलायमिव, प्रहर्षः प्रसन्नता सतुष्टिः सतोष तयोः पात्रभूत भाजनमिव मदान्धभूत प्रणय-विह्वलं तत् द्वन्द्व सहैव सयुज्यैव अरंस्त रेमे। प्रणयभावबद्धौ कामासक्तौ तौ परस्परं सार्धमेव केलिकलासु आनन्द मनुभूतवन्तौ।

Being target as it were of cupid and his spouse Rati, being a nest of delight and joy, being a vessel of pleasure and gratification the two dallied in amorous *sports blindly*

काम और रति के लक्ष्य बनकर, विनोद और आनन्द के नीड बन कर, प्रसन्नता और सन्तोष के पात्र बन कर उस कामविह्वल युगल ने परस्पर रमण किया।

(९)

परस्परोद्वीक्षण तत्पराक्ष
परस्परव्याहृत-सक्त-चित्तम्।
परस्परा-श्लेप-हृताङ्गरागम्
परस्परंतन्मिथुनं जहार॥

अन्वय:-परस्परोद्वीक्षणतत्पराक्ष परस्परव्याहृतसक्तचित्तं परस्पराश्लेप-हृतांगराग तन्मिथुन परस्परं जहार।

व्याख्या—परस्परोद्वीक्षणे मिथः सदर्शने तत्परे उत्सुके अक्षीणि लोचनानि यस्य मिथुनस्य तन्मिथः सदर्शनोत्सुक नेत्र मिथुनम्, परस्पर

व्याहृते भाषणे सक्ते व्यस्ते चित्ते यस्य मिथुनस्य परस्परसभाषणव्यापृत-हृदयमित्यर्थः, परस्पर आश्लेषालिंगनादिभि हृत मृष्टमंगरागं यस्य मिथुनस्य द्वन्द्वस्य, एवभूत तत् मिथुन परस्पर जहार चित्त-माचकर्ष ।

With eyes longing to gaze at each other, with their, hearts absorbed in each others conversation, with their body paint rubbed by their mutual embraces, the two continued to attract each other

उनकी आंखें एक दूसरे को देखने में उत्सुक थीं, उनके हृदय एक दूसरे की बातों में खोये हुए थे, एक दूसरे के आलिंगन से उनके अंगराग पुछ गये थे और इस प्रकार उस युगल जोड़ी ने परस्पर एक दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट किया हुआ था।

(१०)

भावानुरक्तौ गिरिनिर्झरस्थौ ।
तौ किनरी कि पुरुषाविवोभौ ।
चिक्रीडतुश्चाभिविरेजतुश्च
रूपश्रियाऽन्योन्यमिवाक्षिपन्तौ ॥

अन्वय—भावानुरक्तौ गिरिनिर्झरस्थौ किनरी कि पुरुषौ इव तौ उभौ रूपश्रिया अन्योन्य आक्षिपन्तौ इव चिक्रीडतु· अभिविरे-जतुश्च ।

व्याख्या—भाव प्रणयस्तस्मिन्ननुरक्तौ प्रणयासक्तौ गिरिनिर्झरस्थौ पर्वतनिर्झरवासिनौ किंनरी किं पुरुषौ यत्तदपतीव रूपश्रिया सौंदर्यकान्त्या अन्योऽन्य परस्पर आक्षिपन्तौ अतिशयानाविव चिक्रीडतु क्रीडा-परौ अभिविरेजतुः अशोभेताम । किन्नरदंपतीव तौ सुन्दरीनन्दौ स्वकीये रूपे प्रतिस्पर्धिनौ क्रीडामलग्नमानसौ रेजतु. ।

Sentimentally attached to each other those two like a yaksha couple residing near a hilly water fall, as if challenging each other in the radiance of beauty, sported and shone forth

परस्पर प्रणयभाव में बंधे वे दोनों पर्वत के झरने पर वास करने वाले किन्नरयुगल के समान सौन्दर्य की कान्ति से एक दूसरे को चुनौती देते हुए परस्पर क्रीड़ा में आसक्त हो शोभित हुए।

(११)

अन्योऽन्यसंरागविवर्धनेन
तद्द्वन्द्वमन्योऽन्यमरीरमच्च ।
क्लमान्तरेऽन्योऽन्यविनोदनेन
सलीलमन्योऽन्यममीमदच्च ॥

अन्वय—अन्योन्यसरागविवर्धनेन तत् द्वन्द्वं अन्योऽन्यमरीरमत्, क्लमान्तरे च अन्योऽन्यविनोदनेन सलीलमन्योन्यममीमदत्।

व्याख्या—सरागः प्रणयः परस्परप्रणयसंवर्धनेन, तत् द्वन्द्वं मिथः अरीरमत् मोदयामास। क्लम श्रमस्तदनन्तरे अन्योऽन्यविनोदनेन मनोरंजनेन सलील सक्रीड अन्योन्य अमीमदत् मिथः मादयामास। पूर्व प्रणयव्यापारेषु प्रसक्तचेतसौ तौ आनन्दोपभोग चक्रु। पश्चात् श्रान्तौ सक्रीड मनोरंजनादिभि परस्पर मादयाचक्रुरित्यर्थः।

Having inflamed mutual passions the two yielded ecstasy to each other In the interval of exhaustion they sportively intoxicated each other by means of recreations

परस्पर अनुराग बढा कर, उस युगल ने एक दूसरे को आनन्दित किया और थकावट के बाद परस्पर मनोरंजन कर एक दुसरे को लीला सहित उन्मत्त बनाया।

(१२)

विभूषयामास ततः प्रियां स
सिषेविषुस्तां न मृजाहवार्थम्।
स्वेनैव रूपेण विभूषिता हि
विभूषणानामपि भूषणं सा ॥

अन्वय --तत प्रियां सिषेविषु न मृजाह्वार्थं स ता विभूषयामास, हि सा स्वेनैव रूपेण विभूषिता विभूषणानां अपि भूषण (आसीत्)।

व्याख्या—ततः परस्परानन्दप्रदानानन्तर प्रिया सिषेविषु सेवितुकामः, न मृजाह्वार्थं प्रसाधनसस्कारार्थं, सः ता विभूषयामास अलकृतवान्। हि यत स्वेनैव स्वकीयेन रूपेण सौन्दर्येण पर्याप्त विभूषिताऽलकृता सा विभूषणानामाभरणानामपि भूषण मडनमासीत्। नन्दः प्रिया सेवितुकाम एव तामलकृतवान् यतः सा स्वयमेव स्वकीयेन रूपेण विभूषिता पर्याप्तमलकृतासीत् नदस्य प्रसाधनेन तस्याः सौन्दर्यपरिवृद्धिः न सभावनीयासीत्। तस्यानुग्रहलाभाय एव नन्दस्तस्या मडनमकरोत्।

Then he decorated his beloved to prove serviceable to her and not to ornament her only, because she the ornaments of ornaments was well embellished by her beauty

तब प्रिया की सेवा करने की इच्छा से, केवल शृंगार भावना से नहीं, उसने उसे सजाया, क्योंकि भूषणों को भी सुन्दरता प्रदान करने वाली वह अपने ही रूप से भूषित थी।

(१३)

दत्वाथ सा दर्पणमस्य हस्ते
ममाग्रतो धारय तावदेनम्।
विशेषक यावदह् करोमी-
त्युवाच कान्त स च त बभार॥

अन्वय —सा अस्य हस्ते दर्पणं दत्वा त कान्तं उवाच 'यावदहं विशेषक करोमि, एन मम अग्रतो धारय' इति। स च तं बभार।

व्याख्या—सा अस्य नन्दस्य हस्ते करे दर्पण मुकुर दत्वा त स्वकीयं कान्त प्रियमुवाच यावदह विशेषकं मुखमण्डन करोमि विदधामि तावत् त्व

एनं मुकुरं अग्रत सम्मुखे स्थित्वा धारय। स च नन्दस्तमादर्शं तथैव बमार धारयामास। नन्दहस्ते दर्पण दत्वा सुन्दरी विशेषकं चकार स्वकीय मुखप्रसाधन सपादयामास।

Having handed a looking glass in the lover's hands, she asked him, "Hold it out till I paint my face" And he held it out.

तब अपने प्रियतम के हाथ में दर्पण पकड़ाकर सुन्दरी ने कहा, 'जब तक मैं यह विशेषक समाप्त नहीं कर लेती, इसे पकड़े रहो'। और तब न द उस दर्पण को अपने हाथ में वैसे ही पकड़े रहा।

(१४)

भर्तुस्तत श्मश्रु निरीक्षमाणा
विशेषकं सापि चकार तादृक्।
निश्वासवातेन च दर्पणस्य
चिकित्सयित्वा निजघान नन्दः॥

अन्वय.—तत भर्तुःश्मश्रु निरीक्षमाणा सापि तादृक् विशेषकं चकार। नन्दश्च निश्वासवातेन चिकित्सयित्वा दर्पणस्य निजघान।

व्याख्या—ततः भर्तुर्नन्दस्य श्मश्रु. निरीक्षमाणा पश्यन्ती सा सुन्दरी तादृक् तथैव आत्मनो वदने विशेषक मडनं चकार। सापि स्वकीयमुखे वर्णिकया श्मश्रु चित्रितवतीत्यर्थ। तस्या शाठ्य निरीक्ष्य नन्द निश्वासवातन श्वासवायुना तत् चिकित्सयित्वा प्रतिकार विधाय दर्पणस्य छायां निजघान समापितवान्। मनोविनोदनाय सुन्दर्या स्वकीये मुखे नन्दवत् श्मश्रु चित्रितासीत्। नन्दस्तस्या दुर्ललितशाठ्य विलोक्य दर्पणच्छाया श्वासेन आविलयामास।

Looking at the moustaches of her husband she too painted her face the same way Nanda (noticing her mischief) counteracted by blinding the surface of the mirror with his breath.

अपने प्रिय की मूर्छा को देखकर सुन्दरी ने भी उसी प्रकार विशेषक चित्रित किया। तब नन्द ने प्रतिकार कर मुख के श्वास से दर्पण को मैला कर दिया।

(१५)

सा तेन चेष्टाललितेन भर्तु
शाठ्येन चान्तर्मनसा जहास।
भवेच्च रुष्टा किल नाम तस्मै
ललाटजिम्हा भृकुटि चकार॥

अन्वय'—सा तेन भर्तुश्चेष्टाललितेन शाठ्येन च मनसान्तर्जहास। किल नाम तस्मै रुष्टा च भवेत् ललाटजिम्हां भृकुटिं चकार।

व्याख्या—सा सुन्दरी भर्तुः नन्दस्य चेष्टाललितेन सुभगविनोदेन शाठ्येन परिहासेन च अन्तर्मनसा मनसि भृश जहास हृदये प्रसन्नाभूदित्यर्थ'। किल नाम रुष्टा च कृत्रिमरोषपरा च स्वकीयां भृकुटिं भ्रूचापं ललाटजिम्हा ललाटे वक्रा चकार। नन्दस्य परिहासेन सुन्दरी मनसि नितान्त तुष्टापि कृत्रिमरोषव्याजेन भ्रूलतामाकुञ्चयामास।

She felt delighted in heart by her husband's playful trick and mischief But feigned anger and knitted her eye brows at the fore head

प्रियतम की इस शरारत भरी लीला पर वह मन ही मन हँसी, पर नाममात्र को रोष प्रकट करने के लिये उसने अपनी भौंहों को टेढ़ा कर लिया।

(१६)

चिक्षेप कर्णोत्पलमस्य चांसे
करेण सव्येन मदालसेन।
पत्राङ्गुलिं चार्धनिमीलिताक्षे
वक्त्रेऽस्य तामेव विनिर्दुधाव॥

अन्वयः—सव्येन मदालसेन करेण अस्य अंसे कर्णोत्पलं च चिक्षेप। अस्य च अर्धनिमीलिताक्षे वक्त्रे तामेव पत्रांगुलिं विनिदुधाव।

व्याख्या—सव्येन वामेन मदालसेन मदशिथिलेन करेण अस्य नन्दस्य अंसे स्कन्धप्रदेशे कर्णोत्पलं अवतंसभूतं कमलं चिक्षेप क्षिप्तवती। पुनश्चास्य अर्धनिमीलिताक्षे ईषदुन्मीलितनेत्रे वक्त्रे मुखे तामेव पत्रांगुलिं रागक्लिन्नामगुलिं विनिदुधाव न्यस्तवती। प्रथमं नन्दं कर्णोत्पलेन ताडयामास तदनन्तरं च संमोदनिमीलितनेत्रे वदने पत्रांगुलिना चित्रितवती।

By her left languid hand she threw the ear- lotus on his shoulder Further, on his face with eyes half shut, she applied the same paint-stick.

तदनन्तर अपने अलसाये बाये हाथ से अपने कान का कमल उसने नन्द के कंधे पर फेंका। उसके अधमुंदे नयन वाले मुख पर फिर उसने वही अंगराग लेप दिया।

(१७)

ततश्चलन्नूपुरयोक्तृताभ्यां
नखप्रभोद्भासितरागुलिभ्याम्।
पद्भ्यां प्रियाया नलिनोपमाभ्यां
मूर्ध्ना भयान्नाम ननाम नन्दः॥

अन्वयः—ततः चलन् नूपुरयोक्तृताभ्यां नखप्रभोद्भासितांगुलिभ्यां नलिनोपमाभ्यां प्रियायाः पद्भ्यां नन्दः भयान्नाम ननाम।

व्याख्या—ततः चलन् चंचलनूपुरयुक्ताभ्यां नखप्रभा नखकान्तिस्तयोद्भासि प्रकाशितांगुलिभ्यां नलिनोपमाभ्यां कमलतुल्याभ्यां प्रियायाः

पद्भ्यां चरणाभ्यां नन्द. भयान्नाम कृत्रिमभयप्रदर्शनपूर्वकं ननाम नमश्चकार। तां मानिनीं प्रसादयितुं नन्दस्तस्याः चरणयोरात्मनः शिरसा प्रणतिमकरोत्।

As if in fear he bowed down in the feet of his beloved, which had tremulous anklets, the toes of which gleamed by the brilliant rays of the nails and which resembled two lotuses

तब चचल नूपुरों से युक्त जिनकी अंगुलिया नख कान्ति से चमक रही थीं, उन कमल से कोमल चरणों में नन्द ने इस प्रकार शिर नवाया मानों वह भयभीत हो।

(१८)

स मुक्तपुष्पोन्मिषितेन मूर्ध्ना
ततः प्रियायाः प्रियकृत् बभासे।
सुवर्णवेद्यामनिलावभग्नः
पुष्पातिभारादिव नागवृक्षः॥

अन्वय—ततः मुक्तपुष्पोन्मिषितेन मूर्ध्ना प्रियायाः स प्रियकृत सुवर्णवेद्यां पुष्पातिभारात् अनिलावभग्न नागवृक्ष इव बभासे।

व्याख्या—तत मुक्तैः स्रस्तैः पुष्पैः कुसुमैरुन्मिषितेन ईषल्लक्ष्येन मूर्ध्ना शिरसा, सः प्रियायाः सुन्दर्याः प्रियकृत् वल्लभः, सुवर्णवेद्यां वेदिकायां पुष्पातिभारात् कुसुमभारात् अनिलः पवनस्तद् वेगेनावभग्नः पतित नागवृक्षः पुनाग इव बभासे अशोभत। प्रियाचरणयोः न्यस्तमूर्धा नन्दः सौवर्णवेदिकायां पतित पुनाग इवाधिक राज।

With flowers dropped down from his head that wooer of his beloved shone forth like an Arjun tree, fallen on a gold platform uprooted by the wind and laden with abundance of flowers

तब फूल गिर जाने से उसका मस्तक चमक उठा, और वह इस प्रकार शोभित हुआ जैसे सोने की वेदी पर वायुवेग और फूलों के भार से गिरा हुआ नागवृक्ष हो।

(१६)

सा त स्तनोद्वर्तितहारयष्टि·
उत्थापयामास निपीड्य दोर्भ्याम् ।
कथ कृतोऽसीति जहास चोच्चै·
मुखेन साचीकृतकुंडलेन ॥

अन्वयः—स्तनोद्वर्तितहारयष्टि सा त दोर्भ्या निपीड्य उत्थापयामास । साचीकृतकुंडलेन मुखेन च कथ कृतः असि' इति (उक्त्वा) उच्चैः जहास ।

व्याख्या—स्तनयोः उद्वर्तिता लम्बिता हारयष्टि. हारावलिर्यस्या सा सुन्दरी तं नन्द दोर्भ्या बाहुभ्या निपीड्य परिष्वज्य उत्थापयामास । साचीकृतालम्बितकुंडलेन मुखेन च, कथ कृतः असि किं त्वया कृतमासीत् इत्युक्त्वा उच्चैः स्पष्ट जहास अहसत् । स्वचरणनिपतित प्रिय वीक्ष्य त बाहुभ्या उत्थाप्य पृष्टवती पूर्व त्वया किमर्थ मुकुर मलिनीकृतम् ?

With stiings of necklace swung over her breasts, she raised him up having clasped in the arms. With ear rings dangling around her face she, asked him, what have you done, and laughed aloud

जिसके हार की लड़िया उछलकर स्तनों पर झूल रही थीं ऐसी सुन्दरी ने प्रिय को बाहों में भरकर ऊपर उठाया और फिर कान के कुंडलों को झुलाते हुए मुख से पूछा 'क्यों क्या हुआ' ? और फिर स्वय ज़ोर से हस पड़ी ।

(२०)

पत्युस्ततो दर्पणसक्तपाणेः
मुहुर्मुहुर्वक्त्रमवेक्षमाणा ।
तमालपत्रार्द्रतले कपोले
समापयामास विशेषक तत् ॥

अन्वयः—तत. दर्पणसक्तपाणेः पत्युः मुख मुहुर्मुहुः अवेक्षमाणा (सा) तमालपत्रार्द्रतले कपोले तत् विशेषकं समापयामास ।

व्याख्या—तत' दर्पणसक्तपाणौ मुकुरव्यापृतहस्तस्य पत्यु नन्दस्य मुख मुहुर्मुहुः बार बार अवेक्षमाणा निरीक्ष्यमाणा सा सुन्दरी तमाल-पत्रवत् आर्द्र तले स्निग्धे कपोले विशेषक अ गराग विलेपन समापयामास। प्रेम्णा सुस्निग्ध पश्यन्ती नन्दमुखं सा कपोले तदालेख्य समापयामास।

• With his hands busy in holding the mirror, she completed the painting of her face with surface as smooth as a Tamal leaf and continued to gaze at Nanda repeatedly

तब नन्द ने दर्पण हाथ में पकड़ लिया, उसके मुख से बार'बार देखती हुई सुन्दरी ने अपने तमालपत्र से कोमल गालों पर विशेषक लगा लिया।

(२१)

तस्या मुख तत्सतमालपत्रं
ताम्राधरोष्ठ चिकुरायताक्षम्।
रक्ताधिकाग्र पतितद्विरेफ
सशैवल पद्ममिवावभासे॥

अन्वय—सतमालपत्र ताम्राधरौष्ठ चिकुरायताक्ष तस्या मुख रक्ताधिकाग्र पतितद्विरेफ सशैवल पद्ममिव आवभासे।

व्याख्या—तमालदलसहित ताम्र रक्त अधरोष्ठ यस्य अरुणाधर चिकुरे चचले आयते विशाले लोचने यस्य चचलदीर्घलोचनं तस्या वदनं रक्ताधिकाग्र लोहिताभ पतितद्विरेफं भ्रमरससेवितं सशैवल शैवलयुत कमलमिव आबभासे शोभितवान्। विशेषकानन्तर तस्या. सुन्दरं मुख कमलमिवाधिकमशोभत।

Moistened by a Tamal leaf, with red nether-lip and tremulous long eyes her face looked like an excessively red lotus which is surrounded by bees and water-weeds

तमालपत्र से युक्त उसका वह मुख जिसके अधर लाल थे और चंचल विशाल लोचन थे, उस रक्त कमल के समान शोभित हो रहा था जिस पर भारे मँडरा रहे हों और जो शैवाल से घिरा हो।

(२२)

नन्दस्ततो दर्पणमादरेण
बिभ्रत्तदामंडन साक्षिभूतम् ।
विशेषकावेक्षण केकराक्षः
लडत् प्रियाया वदनं ददर्श ॥

अन्वय.—ततः मंडनसाक्षिभूतं दर्पणं आदरेण बिभ्रत् विशेषकावेक्षणकेकराक्षः नन्दः प्रियायाः लडत् वदनं ददर्श ।

व्याख्या—ततः मंडनसाक्षिभूतं प्रसाधनसूचक दर्पणमादर्शं आदरेण सुनिपुण बिभ्रत् धारयन्, विशेषक कपोलालेख्यं तस्य अवेक्षणे प्रेक्षणे केकराक्षः तिर्यग् लोचनः नन्द प्रियायाः सुन्दर्याः लडत् शोभनं वदन मुख ददर्श अपश्यत् । हस्ते मुकुरमादाय नन्दः प्रियाया वदने चित्रित विशेषक मुख च सुस्निग्धमपश्यत् ।

Then holding carefully that mirror witness of the decorations carried out, with eyes falling slant at the paintings Nanda gazed at her pretty face.

उस शृंगार के साक्षी दर्पण को सावधानी से पकड़ते हुए, तिरछी नज़र से उसके विशेषक को देखते हुए नन्द ने प्रियतमा के सुन्दर मुख को देखा ।

(२३)

तत्कुण्डलादष्टविशेषकान्तं
कारंडवक्लिष्टमिवारविन्दम् ।
नन्दः प्रियायाः मुखमीक्षमाणः
भूयः प्रियानन्दकरो बभूव ॥

अन्वयः—तत् कुण्डलादष्टविशेषकान्तं कारंडवक्लिष्टं अरविन्दम् इव प्रियाया मुखं ईक्षमाणः नन्दः भूयः प्रियानन्दकरः बभूव ।

व्याख्या—तदनन्तर कुण्डलाभ्यां आदष्ट भक्षित पिहित वा विशेषकस्य मदनस्यान्तं अन्तभाग कुण्डलपिहितविशेषकान्तभागं, कारण्डवाभ्यां सारसाभ्यां किन्नष्टमाकृष्ट अरविन्द कमल इव, प्रियायाः मुख वदनं ईक्षमाणः पश्यन् नन्दः भूयः अधिकं प्रिया सुन्दरी तस्या आनन्दकं प्रीतिकर बभूव। उभयकपोलयोरालम्बिताभ्यां कुण्डलाभ्यां विशेषकस्य अन्तभाग पिहितं प्रच्छन्नमासीत्, अतस्तत् कारण्डवाकृष्टकमलमिव व्यराजि। तन्मुखमीक्षमाणः प्रिय प्रियायै सुखदो बभूवेत्यर्थः।

With both ends of visheshaka concealed under the ear rings, her face resembled a lotus being dragged by two swans on both sides Nanda gazed at the face and added delight to his beloved

कुण्डलों के स्पर्श से विशेषक के दोनों छोर जहां मिट से गये थे ऐसा मुख उस कमल के समान शोभित दीख पड़ा जिसे दोनों ओर हंस खींच रहे हों। उस प्रिया के मुख को देखते हुए नन्द ने सुन्दरी को और भी प्रसन्न किया।

(२४)

विमानकल्पे स विमानगर्भे
ततस्तथा चैव ननन्द नन्द।
तथागतश्चागतभैक्षकाल
भैक्षाय तस्य प्रविवेश वेश्म॥

अन्वय—विमानकल्पे विमानगर्भे स नन्द तथा ननन्द। ततश्च आगतभैक्षकाल तथागतः तस्य वेश्म प्रविवेश।

व्याख्या—विमानकल्पे देवप्रासादतुल्ये विमानगर्भे प्रासादकक्षे स नन्दस्तथा उक्त प्रकारं ननन्द अमोदत। ततस्तदनन्तरं आगत आयात भैक्षकालः भिक्षासमय. यस्य स तथागतः बुद्धः भैक्षाय भिक्षायै

तस्य नंदस्य वेश्म गृहे प्रविवेश प्रवेश कृतवान्। एवं पूर्वोक्तप्रकारे नंदस्तु स्वकीये प्रासादे नितरा मोदपर. आसीत। तदैव भिक्षास भगवान् बुद्धः स्वीयभ्रातुर्गृहे समाजगाम।

Thus Nanda revelled in his mansions resembli celestial palaces. Then at the fixed hour of begging Budd entered his house for begging alms.

इस प्रकार देव-प्रासाद तुल्य उस महल में नन्द विहार करता थ तभी (एक दिन) भिक्षा के निश्चित समय पर बुद्ध ने उस गृह में भि के लिये प्रवेश किया।

(२५)

अवाङ् मुखो निष्प्रणयश्च तस्थौ
भ्रातुर्गृहेऽन्यस्य गृहे यथैव।
तस्मादथो प्रेष्यजनप्रमादात्
भिक्षामलब्ध्वैव पुनर्जगाम॥

अन्वय:—यथा अन्यस्य गृहे (तथा) भ्रातु गृहे अवाङ्मु निष्प्रणयश्च तस्थौ। अथ प्रेष्यजनप्रमादात् भिक्षां अलब्ध्वा तस्मात् पुन. जगाम।

व्याख्या—यथा अन्यस्य कस्यचिदपि गृहे कोऽपि तिष्ठेत् त भ्रातु. नन्दस्य गृहे भगवान् अवाङ्मुख. नतवदन. निष्प्रणय. उदास वत् आगन्तुक इव तस्थौ स्थितवान्। अनन्तर च प्रेष्यजनानां दास प्रमादात् अनवधानात् भिक्षा अलब्ध्वा अप्राप्य एव तस्मात् गृहात् पु गाम निश्चक्राम। मुहूर्तं बुद्ध. स्वीयभ्रातुर्गृहे एव तस्थौ यथा नस्यि परिचितस्य गृहे कोऽपि स्थितो भवति। यदा केनापि तस्य स्वाग कृत, स प्रतिनिवृत्त.।

With face leaning down and like one detached he st in his brother's abode as if in some one's house. Then, beca of carelessness of alttendants, he left the house with obtaining alm..

नीचा मुख किये उदासीन थे तब वे अपने भाई के घर में इस प्रकार खड़े रहे जैसे किसी अपरिचित घर में हों। तब दासजनों की असावधानी के कारण बिना भिक्षा प्राप्त किये ही वे वापिस चले गये।

(२६)

काचित् पिपेषाङ्गविलेपनं हि
वासोऽङ्गना काचिदवासयच्च।
आयोजयत् स्नानविधिं तथान्या
जग्रन्थुरन्याः सुरभीः स्रजश्च ॥

अन्वयः—काचित् हि अंगविलेपनं पिपेष, काचित् च अंगना वासः अवासयत्, तथा अन्या स्नानविधिं आयोजयत्, अन्याः च सुरभीः स्रजः जग्रन्थुः।

व्याख्या—काचित् स्त्री अंगविलेपनं अंगरागं पिपेष चूर्णितवती, काचित् च वासः वस्त्राणि अवासयत्, तथा अन्या योषित् स्नानविधिं प्रक्रियां आयोजयत् योजयामास, अन्याश्च स्त्रियः सुरभी. सुगन्धा स्रजः पुष्पमालाः जग्रन्थुः ग्रथितवत्यः। तस्मिन् समये प्रासादे सर्वा एव विविध-कार्येषु व्यस्ता आसन्।

Some one pounded the body paint another perfumed the garments, similarly another was arranging for bath and the rest were busy wreathing fragrant garlands.

कोई अंगराग (उबटन) पीस रही थी, कोई वस्त्रों में धूप दे रही थी, कोई स्नान के लिये तैयारी कर रही थी और बाकी फूलों की सुगंधित मालाएं गूंथ रही थीं।

(२७)

तस्मिन् गृहे भर्तुरतश्चरन्त्यः
क्रीडानुरूपं ललितं नियोगम्।
काश्चिन्न बुद्धं ददृशुः युवत्यः
बुद्धस्य वेषा नियतं मनीषा ॥

अन्वयः—अतः तस्मिन् गृहे भर्तुः क्रीडानुरूप ललित नियोगं चरन्त्यः काश्चित् युवत्यः बुद्धं न ददृशुः। वा बुद्धस्य एषा मनीषा नियतं (आसीत्)।

व्याख्या—अत एतस्मात् कारणात् तस्मिन् गृहे हर्म्ये भर्तुः नन्दस्य क्रीडानुरूप खेलानुकूल ललितं स्निग्ध नियोग आदेशं चरन्त्यः अनुपालयन्तः काश्चित् का अपि युवत्यः समागत बुद्ध न ददृशुः नापश्यन्। वा अथवा एषा बुद्धस्य एव नियत निश्चितं मनीषा अभिलाषासीत्। नन्दस्य क्रीडाकर्मसु व्यापृता अगना समागत बुद्धं न विविदुः। कदाचिदेषा बुद्धस्य वाञ्छासीत् यत् कोऽपि तस्यागमन न जानीयात् येन नन्दस्य प्रबोधस्य अवसरः उत्पद्येत।

Therefore, occupied in the easy directives pertaining to sports and gambls of the master, the women took no notice of Buddha's arrival or it was so desired by Buddha

इस प्रकार नन्द महाराज की क्रीडा के अनुरूप विविध सुन्द आदेशों का पालन करती हुई वे स्त्रिया बुद्ध के आगमन को न जान सकीं। सभव है बुद्ध भगवान् की यही इच्छा रही हो।

(२८)

काचित्स्थिता तत्र तु हर्म्यपृष्ठे
गवाक्षमार्गे प्रणिधाय चक्षुः।
विनिष्पतन्तं सुगतं ददर्श
पयोदगर्भादिव दीप्तमर्कम् ॥

अन्वयः—काचित् तु तत्र हर्म्यपृष्ठे स्थिता गवाक्षमार्गे चक्षु प्रणिधाय पयोदगर्भात् दीप्त अर्क इव विनिष्पतन्त सुगत ददर्श।

व्याख्या—काचिदगना तत्र हर्म्यपृष्ठे प्रासादतले स्थिता गवाक्षमार्गे वातायने चक्षु नेत्र प्रणिधाय प्रेरयित्वा पयोदगर्भात् मेघोदर

विनिष्पतन्त निस्सरन्त दीप्त भास्वरं अर्क सूर्य इव गृहात् बहिर्गच्छन्तं सुगतं बुद्ध ददर्श अपश्यत्। सयोगवशात् हर्म्यपृष्ठस्था काचित् योषित् गृहात् बहिरागच्छन्त बुद्ध एवमपश्यत् यथा नीलनीरदगर्भात् भगवान् भास्कर निस्सरति।

Some one standing on the roof the palacen happened to look through the ventilator and noticd Budha coming out of the house as the blazing sun emerges out of the interior of the clouds

किसी स्त्री ने महल की छत पर खड़े होकर झरोखे की राह से भगवान् बुद्ध को घर से बाहर इस प्रकार निकलते देखा जैसे मेघों के भीतर से चमकीला सूर्य बाहर निकलता है।

(७६)

सा गौरव तत्र विचार्य भर्तुः
स्वया च भक्त्यार्हतयार्हतश्च।
नन्दस्य तस्थौ पुरत· विवक्षुः
तदाज्ञया चेति तदाचचक्षे॥

अन्वय —तत्र सा (भर्तुः गौरव विचार्य) स्वया भक्त्या अर्हतश्च अर्हतया नन्दस्य पुरत विवक्षुः तस्थौ तदाज्ञया च तदा इति आचचक्षे।

व्याख्या—तस्मिन समये सा स्त्री स्वया भक्त्या श्रद्धया अर्हतः बुद्धस्य अर्हतया पूजनीयभावनया भर्तुः नन्दस्य गौरव प्रतिष्ठा च विचार्य नन्दस्य पुरत संमुखे विवक्षुः वक्तुमिच्छुः तस्थौ स्थितवती। तद् आज्ञया नन्दादेशेन च तत् एव आचचक्षे अकथयत्। स्वीयभक्त्या नन्दस्य प्रतिष्ठा च ज्ञात्वा सा भर्तु समीपे गत्वा निवेदन चकार।

Considering the great reverence for the master and having worshipped Buddha out of her own devotion, she desirous of informing Nanda approached and spoke thus at his permission

अपनी भक्ति तथा पूज्य भावना से प्रेरित होकर एवं बुद्ध भगवान् के आदर का ध्यान धर सूचना देने की इच्छा से वह नन्द के समीप पहुँची और उसकी आज्ञा प्राप्त कर ऐसे बोली।

(३०)

अनुग्रहायास्य जनस्य शंके
गुरुर्गृहं नो भगवान्प्रविष्टः।
भिक्षामलब्ध्वा गिरमासनं वा
शून्यादरण्यादिव याति भूयः॥

अन्वय – शंके अस्य जनस्य मम अनुग्रहाय नः गृहं गुरु भगवान् प्रविष्ट, भिक्षां गिरं आसन वा अलब्ध्वा एव शून्यात् अरण्यात् इव भूय याति।

व्याख्या—शंके अहं जाने यत् अस्य जनस्य मम अनुग्रहाय कृपायै नः अस्माकं गृहं गुरुः भगवान् बुद्ध प्रविष्ट आसीत्। किन्तु भिक्षा भैक्ष गिर सूनृता वाणीं आसनं विष्टर अप्राप्य एव अस्मात् गृहात् भूय पुनः शून्यात् निर्जनात् अरण्यात् काननात् इव याति बहिर्गच्छति। जाने यदस्माकंअनुकपार्थं भगवान् बुद्ध समायातः परं भिक्षामप्राप्यैव बहिर्गच्छति।

I presume that in order to oblige the person the great saint had entered our house out of compassion But having failed to obtain alms, sweet speech or a seat, he is going back.

मेरा विचार है कि हम पर अनुग्रह कर इस घर में बुद्ध भगवान् आये थे। पर भिक्षा, सत्कार की वाणी अथवा आसन विना प्राप्त किये ही वे वापिस जारहे हैं।

(३१)

श्रुत्वा महर्षेः स गृहप्रवेशं,
सत्कारहीनं च पुनः प्रयाणं,।
चचाल चित्राभरणाम्बरस्रक्,
कल्पद्रुमो धूत इवानिलेन॥

अन्वय —चित्राभरणाम्बरस्रक् सः (नन्द) महर्षेः गृह प्रवेशं पुनश्च (तस्य) सत्कारहीन प्रयाणं श्रुत्वा अनिलेन धूत कल्पद्रुम इव चचाल ।

व्याख्या:— चित्राभरणाम्बरस्रक् चित्रैः मनोहरैः आभरणैः आभूषणैः अम्बरैः वस्त्रैः स्रग्भिश्च मालाभिश्च युक्तो विभूषितो वा सः (नन्दः) महर्षेः तथागतस्य गृहप्रवेश स्वगृहागमन पुनश्च तत्पश्चात् तस्य सत्कारहीनं आतिथ्यहीन प्रयाण गमन श्रुत्वा (परिजनमुखात्) निशम्य अनिलेन वायुना धूतः कम्पितः कल्पद्रुम पारिजातः इव चचाल कम्पितवान् ।

Hearing that the great saint had entered his houee and departed again without receving a welcome, he with beauti ful ornaments, clothes and garlands, started as if a tree of Paradise shaken by the wind.

यह सुनकर कि महर्षि ने घर में प्रवेश किया था और सत्कार के विना ही वे लौट गये, मनोहर आभूषणों, वस्त्रों, एव मालाओं से युक्त नन्द वायु से कम्पित कल्पवृक्ष के समान काँपने लगा ।

(३२)

कृत्वाञ्जलिं मूर्धनि पद्मकल्पं
ततः स कान्तां गमनं ययाचे ।
कर्तुं गमिष्यामि गुरौ प्रणामं
मामभ्यनुज्ञातुमिहार्हसीति ॥

अन्वय —ततः स पद्मकल्प अञ्जलिं मूर्धनि कृत्वा कान्तां गमनं ययाचे—"गुरौ प्रणाम कर्तुं गमिष्यामि इह माम् अभ्यनुज्ञातुम् अर्हसि" इति ।

व्याख्या— ततः तदनन्तर स नन्द पद्मकल्प कमलसदृशं अञ्जलि हस्तपुटं कृत्वा कान्ता प्रिया गमनं ययाचे प्रार्थितवान्, यत् गुरौ महर्षौ प्रणाम प्रणतिं कर्तुं विधातु गमिष्यामि अतएव इह अस्मिन् विषये माम् अभ्यनुज्ञातुम अनुमतिं दातु अर्हसि इति ।

Then joining his hands like a lotus bud and raising them to his head he asked his beloved for leave to go, saying I shall go to bow to the Guru, so it behoves of you to give me leave for this."

तब उसने मस्तक पर कमल सदृश अञ्जलि बाँध कर प्रिया से जाने की आज्ञा मागी—"मैं गुरू को प्रणाम करने जाऊँगा, इस लिए तुम्हें मुझे आज्ञा देनी चाहिये।"

(३३)

सा वेपमाना परिषस्वजे त
शालं लता वातसमीरितेव।
ददर्श चाश्रुप्लुतलोलनेत्रा
दीर्घं च निश्वस्य वचोभ्युवाच॥

अन्वयः—वेपमाना सा तं परिषस्वजे वातसमीरिता लता इव शालं, अश्रुप्लुतनेत्रा (सा तं) ददर्श च, दीर्घं च निश्वस्य वचः अभ्युवाच।

व्याख्या—(इदं श्रुत्वा) वेपमाना कम्पनयुक्ता सा नन्दकान्ता तं नन्दं परिषस्वजे समालिङ्गितवती वातसमीरिता वायुना कम्पिता लता इव वल्ली इव शालं एतन्नामकं वृक्षम्। अर्थात् यथा वायुवेपिता लता समीपस्थं शालवृक्षं समालिङ्गति तथैव वेपमाना सा नन्दकान्ता तं परिषस्वजे। पुनः किं कृतवती सा ? पुनः सा अश्रुप्लुतनेत्रा वाष्पसिक्तनयना तं ददर्श दृष्टवती तदनन्तरं दीर्घं निश्वस्य दीर्घनिश्वासपूर्वकं वचः वक्ष्यमाणवचनं अभ्युवाच कथितवती।

(Hearing this) she clasped him trembling, as a creeper stirred by, a wind clasps a sal tree and, gazing at him with rolling eyes swimming with tears, said to him with a long sigh

(यह सुन कर) काँपती हुई उसने उसका (नन्द का) आलिङ्गन किया जैसे वायु से कम्पित लता शालवृक्ष का आलिङ्गन कर रही हो। अश्रुसिक्त चञ्चल नेत्रों से उसे देख कर निश्वासपूर्वक वह बोली।

(३४)

नाहं यियासोर्गुरुदर्शनार्थम्
अर्हामि कर्तुं तव धर्मपीडा।
गच्छार्यपुत्रैहि च शीघ्रमेव
विशेषको यावदयं न शुष्कः ॥

अन्वय,—अहं गुरुदर्शनार्थं यियासोः तव धर्मपीडां कर्तुं न अर्हामि; (हे) आर्यपुत्र ! गच्छ शीघ्रम् एव च एहि यावत् अथ विशेषकः शुष्क न (भवति)।

व्याख्या— अहं गुरुदर्शनार्थं महर्षिदर्शनाय यियासो गन्तुम् इच्छो. धर्मपीडां धर्मबाधा कर्तुं विधातु न अर्हामि न शक्नोमि अत हे आर्य-पुत्र ! स्वामिन् ! गच्छ प्रस्थान कुरु पुनश्च शीघ्रमेव सत्वरमेव एहि आगच्छ यावत् अयं विशेषक मण्डनप्रसाधन शुष्क न भवति तावत्।

It does not become of me to hinder you in the perfor-mance of your duty to go and see the Guru Go, my lord, but return quickly before this paint is dry

गुरु के दर्शनार्थ जाने के इच्छुक आपके कर्तव्य में बाधा उपस्थित करना मेरे लिए उचित नहीं है। (अत) हे आर्यपुत्र ! जाओ, किन्तु शीघ्र ही लौट कर आओ जिससे कि यह विशेषक सूखने न पाये।

(३५)

स चेद्भवेस्त्वं खलु दीर्घसूत्रो
दण्ड महान्त त्वयि पातयेय।
मुहुर्मुहुस्त्वा शयितं कुचाभ्यां
विबोधयेय च न चालपेयम् ॥

अन्वय— चेत् स त्वं दीर्घसूत्र खलु भवे (तर्हि) त्वयि महान्तं दण्ड पातयेयम्। शयित त्वा मुहु मुहुः कुचाभ्यां विबोधयेयं न च आलपेयम्।

व्याख्या — चेत् कदाचित् स इत्थभूत. त्व दीर्घसूत्र विलम्बायात खलु निश्चयेन भवे तर्हि त्वयि महान्तं अनल्प दण्ड पातयेयम् दण्ड-विधानम् करिष्ये। केन प्रकारेण तद् ब्रूते। शयितं निद्रालीढ त्वा मुहु-र्मुहु वारं वारं कुचाभ्याम् उरोजाभ्या पीडनेन इति शेषः विबोधयेय अर्थात् तव निद्राभङ्ग करिष्ये न पुन. अलपेय त्वया सह वार्तालाप करिष्यामि।

Should you howsever, delay longer, I shall inflict a heavy punishment on you as you lie asleep, I shall repeatedly waken you by beating you with my breasts and shall not speak to you

यदि तुम देर करोगे तो तुम्हें महान दण्ड दूँगी, कुचों (के प्रहार) से तुम्हें बार बार जगाऊँगी और फिर बोलूँगी नहीं।

(३६)

अथाप्यनाश्यानविशेषकाया
मय्येष्यसि त्व त्वरितं ततस्त्वा।
निपीडयिष्यामि भुजद्वयेन
निर्भूषणेनार्द्रविलेपनेन ॥

अन्वय — अथ अपि त्वम् अनाश्यानविशेषकाया मयि त्वरितं एष्यसि तत. त्वां निर्भूषणेन आर्द्रविलेपनेन भुजद्वयेन निपीड-यिष्यामि।

व्याख्या— अथ अत्रान्तर गमनपश्चात् इति अर्थ. अपि चेत् त्वम् अनाश्यानविशेषकाया आर्द्रविशेषकायां मयि मदन्तिके त्वरित शीघ्र एष्यसि आगमिष्यसि तत तर्हि त्वा निर्भूषणेन अलङ्कार-व्यवहितेन आर्द्रविलेपनेन अशुष्कविशेषकेण भुजद्वयेन बाहुयुगलेन निपीडयिष्यामि गाढ समालिङ्गयिष्यामि।

But if you return to me quickly before the paint is dry, I shall hug you with my unadorned arms with the ointment still on them

यदि तुम मेरे विशेषक के सूखने से पूर्व ही लौट आओगे, तो मैं आभूषणरहित तथा लेपयुक्त भुजाओं से तुम्हारा प्रगाढ़ आलिङ्गन करूंगी ।

(३७)

इत्येवमुक्तश्च निपीडितश्च
तयासवर्णस्वनया जगाद ।
एव करिष्यामि विमुञ्च चण्डि
यावद् गुरुर्दूरगतो न मे स ॥

अन्वय — असवर्णस्वनया तया इति एवम् उक्त निपीडितः च जगाद–चण्डि, एव करिष्यामि, विमुञ्च, यावद् सः मे गुरुः दूरगतः न ।

व्याख्या— असवर्णस्वनया विकम्पितस्वरया तया नन्दभामिन्या इति एव पूर्वोक्तप्रकारेण उक्त निपीडित. च समालिङ्गितश्च (स नन्दः इति शेष) जगाद कथितवान् हे चण्डि ! कोपनशीले एवमेव करिष्यामि अर्थात् शीघ्रमेव आगमिष्यामि यावत् तव विशेषकः न शुष्क तद् विमुञ्च मा बाहुपाशात् मुक्त कुरु यावत मे मम गुरु तथागत दूरगत. न स्यात् ।

Having been spoken to and embraced by her whose voice was unsteady, he rplied, "So will I do. Let me go, oh cruel one, before my guru is gone too far

कापती वाणी में उसके द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर और आलिङ्गन किये जाने पर (नन्द ने) कहा—' ऐसा ही करूंगा हे चण्डि, छोड़ो, मेरे वह गुरु दूर न चले जायँ ।

(३८)

ततस्तनोद्वर्तितचन्दनाभ्या
मुक्तो भुजाभ्या न तु मानसेन ।
विहाय वेष मदनानुरूप
सत्कारयोग्य स वपुर्बभार ॥

अन्वय—तत स्तनोद्वर्तितचन्दनाभ्या भुजाभ्यां न तु मानसेन मुक्तः स. मदनानुरूपं वेषं विहाय सत्कारयोग्यं वपुः बभार।

व्याख्या—ततः तत्पश्चात् स्तनोद्वर्तितचन्दनाभ्या कुचघृष्टचन्दन-लेपनाभ्या भुजाभ्या बाहुभ्या मुक्त. न तु मानसेन मुक्तः अपितु मनसि सम्यक् युक्त सः न दः मदनानुरूप कामानुरूपं वेषं विहाय परित्यज्य सत्कारयोग्य आतिथ्ययोग्य वपु. वेषं बभार धृतवान्।

Then freed from her arms covered with sandalwood paste rubbed out by her breasts, but not from her heart, he, having taken off the clothes fit for love making which he was wearing assumed the appearance fit for offering hospitality

तब स्तनों (की रगड़) से जिनका चन्दन छूट गया था ऐसी भुजाओं से, न कि मन से, मुक्त होकर उसने कामक्रीडा के उपयुक्त वेष को छोड़ कर आतिथ्य के अनुरूप वेप धारण किया।

(३६)

सा तं प्रयान्तं रमणं प्रदध्यौ,
प्रध्यानशून्यस्थितनिश्चलाक्षी।
स्थितोच्चकर्णा व्यपविद्धशष्पा
भ्रान्तं मृगं भ्रान्तमुखी मृगीव॥

अन्वय.—प्रध्यानशून्यस्थितनिश्चलाक्षी सा तं प्रयान्तं रमणं प्रदध्यौ स्थितोच्चकर्णा व्यपविद्धशष्पा भ्रान्तमुखी मृगी इव भ्रान्तं मृगम्।

व्याख्या—प्रध्यानशून्यस्थितनिश्चलाक्षी गहनचिन्तनेन शून्यस्थिते निश्चले च अक्षिणी नेत्रे यस्या सा नन्दभामिनी त प्रयान्त गच्छन्त रमणं पतिं प्रदध्यौ मनोयोगपूर्वकं प्रेक्षितवती, का इव स्थितोच्चकर्णा व्यपविद्ध-शष्पा स्खलिततृणा मृगी इव भ्रान्तं दूरे गच्छन्त मृगं हरिणम्। यथा स्खलितमुखतृणा स्थितोच्चकर्णा भ्रान्तमुखी मृगी ध्यानपूर्वकं भ्रान्त मृगं पश्यति तथैव सा नन्दजाया अपि स्वपतिं प्रदध्यौ।

With eyes which were stony and desolate fro brooding she watched her lover going away, just as a hin with ears pricked and wild looks and the grass dropping from her mouth watches the stag wandering away,

चिन्ता के कारण सूनी और निश्चल आंखों से वह (सुन्दरी) उस जाते हुए प्रियतम को मनोयोगपूर्वक ऐसे देखती रही जैसे दूर जाते हुए हरिण को कान खड़े करके, चकित मुखवाली हरिणी (मुख के) तृण को गिराते हुए देखती रहती है।

(४०)

दिदृक्षयाक्षिप्तमना मुनेस्तु
नन्दः प्रयाणं प्रति तत्वरे च।
विवृत्तदृष्टिश्च शनैर्ययौ तां
करीव पश्यन् स ललत्करेणुम् ॥

अन्वय —मुने दिदृक्षया आक्षिप्तमना नन्दः प्रयाणं प्रति तत्वरे च विवृत्तदृष्टिश्च स तां स्वभार्यां पश्यन् शनै ययौ ललत्करेणुं करि इव।

व्याख्या—मुने दिदृक्षया द्रष्टुमिच्छा दिदृक्षा तया आक्षिप्तमना आकृष्टचित्तः नन्दः प्रयाणं गमनं प्रति तत्वरे विवृत्तदृष्टिश्च भार्याभिमुखश्च स तां सुन्दरीं पश्यन् शनैः ययौ गतवान् यथा करि. गजः ललत्करेणुं विलासशीलकरिणीं पश्यन् गच्छति।

But Nanda both hurried to start with mind drawn by desire to see the sage and (at the same time) went slowly with back turned gaze, looking at her as a bullelephant looks at a sportive cow elephant,

मुनिदर्शन की इच्छा से उत्कण्ठितचित्त नंद ने जाने में शीघ्रता की, साथ ही पीछे (सुन्दरी) की ओर दृष्टि घुमाए हुए उसको देखता हुआ

धीरे धीरे इस प्रकार गया जिस तरह विलासिनी हथिनी को देखता हुआ हाथी धीरे धीरे जाता है।

(४१)

क्षातोदरीं पीनपयोधरोरु
स सुन्दरीं रुक्मदरीमिवाद्रेः।
काक्षेण पश्यन्न ततर्प नन्दः
पिबन्निवैकेन जलं करेण॥

अन्वय —स नन्दः अद्रेः रुक्मदरीम् इव क्षातोदरीं पीनपयोधरोरु सुन्दरीं काक्षेण पश्यन् एकेन करेण जलं पिबन्निव न ततर्प।

व्याख्या— स नन्दः अद्रेः पर्वतस्य रुक्मदरीम् इव स्वर्णगुहाम् इव क्षातोदरीं क्षीणमध्यां पीनपयोधरोरु पृथुलकुचजङ्घाम् सुन्दरीं काक्षेण तिरश्चीनदृष्ट्या पश्यन् अद्रेः रुक्मदरी पक्षे तु सङ्कुचिताभ्यन्तरभागां सघनघनाच्छादितपार्श्वां पश्यन् एकेन करेण जलं पिबन् इव न ततर्प तृप्तिं तोषं लब्धवान्

Looking with a sidelong glance at Sundari who with her slender waist and swelling (thick) breasts and thighs resembled a golden cave of a mountain with a narrow interior and spurs on each side covered with thick clouds, Nand could no more be satisfied with looking as if he were drinking water out of one hand

सकड़े अन्तर्भाग वाली और सघन मेघा से आच्छादित युगल पार्श्व वाली पर्वत की स्वर्णकन्दरा के समान पतली कमर वाली, पुष्टकुचयुगला पृथुल जंघा वाली सुन्दरी को कनखियों से देखता हुआ नन्द इस प्रकार तृप्त नहीं हुआ जैसे एक हाथ से पानी पीने वाला तृप्त नहीं होता। (अञ्जलि से पानी पीने से ही तृप्ति मिलती है।)

(४२)

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष
भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।
सोऽनिश्चयन्नापि न ययौ न तस्थौ
तुरंस्तरङ्गेष्विव राजहंसः ॥

अन्वय—बुद्धगतं गौरवं तं चकर्ष पुनः भार्यानुराग आचकर्ष अपि सः अनिश्चयन् तरङ्गेषु तुरन् राजहंसः इव न ययौ न तस्थौ ।

व्याख्या—बुद्धगतं गौरव बुद्धगता भक्तिः तं नन्दं चकर्ष कर्षितवती पुनः भार्यानुराग कान्ताप्रेम तम् आचकर्ष अपि स. अनिश्चयात् गमना गमनानिश्चवयात् न ययौ गतवान् न तस्थौ स्थितवान् यथा तरङ्गेषु लहरीषु तुरन् प्रयासेन गच्छन् राजहंसः इव न ययौ गतवान् न तस्थौ स्थितवान् ।

Reverence for Buddha drew him forward, love for his wife drew him back again, thus from irresolution he neither went away nor stood still, like a royal swan pressing fro wards on the waves

बुद्ध की भक्ति ने उसे (आगे की ओर) खींचा, फिर भार्या के प्रेम न उसे वापिस खींचा । अनिश्चय के कारण न तो आगे ही गया और न खड़ा ही रहा, जैसे तरगों पर (प्रयासपूर्वक) चलने वाला राजहंस न आगे ही बढ़ता है और न निश्चल ही रहता है ।

(४३)

अदर्शनं तूपगतश्च तस्या
हर्म्यात्ततश्चावततार तूर्णं ।
श्रुत्वा ततो नूपुरनिस्वनं स
पुनर्ललम्बे हृदये गृहीतः ॥

अन्वय—तत । तस्याः अदर्शनं उपगतस्तु सः हर्म्यात् तूर्णम् अवततार । तत नूपुरनिस्वनं श्रुत्वा पुन हृदये गृहीत ललम्बे ।

व्याख्या—तत द्विविधान्तर तस्याः सुन्दर्या अदर्शन चक्षुपथातिक्रमण उपगत प्राप्त तु स नद हर्म्यात् निजप्रासादात् तूर्ण शीघ्रं अवततार । तत. सुन्दर्या नूपुरनिस्वन नूपुरध्वनिं श्रुत्वा निशम्य पुन ललम्बे विलम्बितवान् ।

But when he had gone out of her sight, he descended quickly from the palace roof then hearing the tinkling of her anklets he delayed again, gripped in his heart

तब उसकी दृष्टि से ओझल होने पर वह महल से शीघ्र ही उतर गया, फिर नूपुरों का शब्द सुनकर वह बद्धहृदय होकर ठहर गया ।

(४४)

स कामरागेण निगृह्यमाणो
धर्मानुरागेण च कृष्यमाण. ।
जगाम दु खेन विवर्त्यमान
प्लवः प्रतिस्रोत इवापगाया ॥

अन्वय—स. कामरागेण निगृह्यमाणः धर्मानुरागेण च कृष्यमाणः आपगाया प्रतिस्रोतेप्लव इव दुःखेन विवर्त्यमानः जगाम ।

व्याख्या—सः नन्द. कामरागेण कामासक्त्या निगृह्यमाणः बद्ध भवन् धर्मानुरागेण च धर्मप्रेम्णा कृष्यमाण आकृष्ट सन् आपगाया नद्या प्रतिस्रोते विपरीतस्रोते प्लव इव नौका इव विवर्त्यमान वारवार अर्द्धाभिमुखः भवन् दु खेन कष्टेन जगाम ययौ ।

Held back by the passion of his love and drawn forward by his love for duty, he went on reluctantly, half turned round like a boat on a river going against the stream

कामासक्ति से आबद्ध और धर्मानुराग से आकृष्ट होकर वह दु खपूर्वक अर्थात् अनिच्छापूर्वक इस प्रकार मुड़ता हुआ गया जिस प्रकार नाव नदी की प्रतिकूल धारा में जाती है।

(४५)

तत. क्रमैर्दीर्घतमै प्रचक्रमे
कथ नु यातो न गुरुर्भवेदिति ।
स्वजेयता चैव विशेषकप्रिया
कथ प्रियामार्द्र विशेषकामिति ॥

अन्वय—तत. दीर्घतमै क्रमै. प्रचक्रमे कथ नु गुरुः यातो न भवेदिति कथ च विशेषकप्रियां आर्द्रविशेषकां तां प्रियां स्वजेय एव ।

व्याख्या—हृदयस्य द्विविधतां प्राप्त स नन्द. अन्ततोगत्वा दीर्घतमै प्रलम्बै क्रमै पादविन्यासै प्रचक्रमे चलितवान् कथ, नु (सम्भावनायां) गुरु गौतम यात दूरप्रयात न भवेत् इति पुन च विशेषकप्रिया मण्डन प्रसाधनानुकूलां आर्द्रविशेषकां अशुष्कमण्डनप्रसाधना प्रियां तां सुन्दरीं (शीघ्रमेव पुनरागत्य) कथ स्वजेय आलिंगेय एव इति। यावत् भार्यानुरोधेन नन्द विलम्बितवान् तावत् गौतम: सुदूरगत भवेत् इति आशक्य त काले एव प्राप्तु मन्त्वर चलितवान् पुनश्च शीघ्रमेव गुरु दर्शन कृत्वा यावत् प्रियाया विशेषक शुष्क न भवति तावदेव पुनरागत्य प्रियां आलिङ्गय प्रसादयितु अल भवेय इति विचार्य दीर्घतमै क्रमै प्रस्थितवान्।

Then he stepped out with long strides, thinkin perhaps the Guru has already gone and perhaps I ca manage to embrace the beloved, who is fond of the pain while the paint is still wet "

गुरु दूर न चले जायें और (शीघ्र ही वापस आकर) उस विशेषक प्रिय आर्द्र विशेषक वाली प्रिया का आलिङ्गन कर सकूं, यह विचार कर वह तब लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला।

(४६)

अथ स पथि ददर्श मुक्तमानं
पितृनगरेऽपि तथागताभिमानम्।
दशबलमभितो विलम्बमानं
ध्वजमनुयान इवैन्द्रमर्च्यमानम्॥

अन्वय—अथ अनुयान पथि सः ऐन्द्रध्वजम् इव विलम्बमानम् अभितः अर्च्यमान पितृनगरेऽपि तथागताभिमान मुक्तमान दशबल ददर्श।

व्याख्या—अथ प्रस्थानानन्तरम् स नन्द अनुयान, अनुगमनशील, पथि मार्गे ऐन्द्रध्वजमिव इन्द्रस्यकेतुमिव विलम्बमान (बुद्धपक्षे यथास्थान विरममाणम्) अर्च्यमान पूज्यमान पितृनगरेऽपि तथागताभिमान मुक्तमान मानविरहित दशबल बुद्ध ददर्श दृष्टवान्।

Then following he saw on the road the Dasabala (Buddha) who was revered as the Tathagat, and was free from arrogance even in his father's city, stopping and being saluted on all sides, like the flag of Indra when it flies in a procession and is worshipped

तब पीछे जाते हुए उसने मार्ग में दशबल धारी (बुद्ध) को देखा, जो तथागत के रूप में सम्मानित था और पिता के नगर में भी अभिमान से रहित था और जो ठहर-ठहर कर चारों ओर से पूजा जा रहा था जैसे कि जुलूस में फहराता हुआ इन्द्रध्वज।

उद्वीक्षण=ताक झाक । तत्पर+अक्ष=उत्सुक । व्याहृत=बातचीत (वि+आ + √हृ) । आश्लेष=आलिंगन । मिथुन=जोडा ।

० भाव=स्नेह भावना । निर्झर=झरना, जल-प्रपात । किंनरी=यक्षिणी । किंपुरुष=यक्ष । आक्षिपन्तौ=चुनौती देते हुये (आ√क्षिप्)

१. सराग=अनुराग । क्लम=परिश्रम । सलीलं=हावभाव सहित । अरीरमत्=आनन्द प्रदान किया (√रम लुङ् प्रेरणार्थक किया ।

२. मृज=सस्कार । आहव=सम्पादन, युद्ध । सिषेविषु'=सेवा की इच्छा वाला, √सेव् , सन्नन्त प्रयोग ।

३ विशेषक=मुख पर लेपन द्वारा आलेख्य । कान्त=प्रियतम । धारय=धारण करो (√धा-लोट्) । बभार=धारण किया √भृ-लिट्)

४. श्मश्रु=मूछ । निश्वास वात=श्वास की वायु । निरीक्षमाणा=(निर्+√ईक्ष+शानच्) –देखती हुई । चिकित्स-यित्वा=प्रतिकार करके । निजघान=नष्ट किया (नि+√हन्–लिट्)

५. ललित=सुन्दर । शाठ्य=शरारत । जिम्ह-टेढी । भृकुटी=भौंहें । रुष्टा=क्रुद्ध हुई (रुष्+क्त+आ) । चकार=किया (√कृ–लिट्)

६ उत्पल=कमल । अंस=कन्धा । सव्य=बायाँ । मदालस=मस्ती से ढीला पत्रागुलिम्=रंग लगाने की अगुली या ब्रुश । वक्त्र=मुख । विनिर्दुधाव=खींची (वि+निर+√धूम्–लिट्)

७ योक्त्रित=युक्त । प्रभा=कान्ति । उद्भासितर=बहुत चमकने वाली । मूर्धन्=शिर, माथा । ननाम=प्रणाम किया (√नम–लिट्) ।

८ मुक्त=बिखरे । उन्मिषित=खुले हुये (उत्–√मिष–क्त) । अनिल=वायु । अवभग्न =टूटा हुआ (अव√भज+क्त) । नागवृक्ष=केसर का वृक्ष ।

सम्मुख । विचार्य=विचार कर(वि+√चार–ल्यप्) । विवक्षुः=बोलने की इच्छा करने वाला (√वद सन्नन्त प्रयोग) ।

३० शङ्के=शङ्क्–लट्, उत्तम पुरुष ए० व० (आ० , अलब्ध्वा=नञ् √ लभ्+क्त्वा ।

३१ गृह प्रवेश=गृहे–प्रवेश, तत्पु० । सत्कारेण हीनं=सत्कार हीनम् । प्रयाण= गमन । चचाल=√चल्+लिट् , अन्य पु० ए० व० ।

३२ ययाचे=√याच्+लिट् , अन्य पु० ए० व० (आ०) कर्तुं=कृ+तुमन् ।

३३ वेपमाना=√वेप्+शानच्+स्त्री० । परिसस्वजे=परि+√स्वञ्+लिट् अन्य पु० ए० व० । वातेन समीरिता=वातसमीरिता । समीरिता–सम्+ √ईर्+क्त+स्त्री० । निश्वस्य=नि√श्वस्+ल्यप् ।

३४ यियासु=सन्नन्त या+उ ।

३५ दीर्घसूत्रः=ढीला, देर करने वाला ।

३६ अनाश्यान=नञ् श्यै+क्त ।

३७ जगाद=√गद्+लिट् अ० पु० ए० व० ।

३८ विहाय = वि√हा+ल्यप्

३९ प्रयान्तम्=प्र√या+शतृ । प्रदध्यौ=प्र√ध्यै+लिट् अ० पु० ए० व० । (प० प०)

४० दिदृक्षा=दृश्+सन् + अ स्त्री० । दृष्टि =दृश्+क्तिन् । करेणु=हथिनी ।

४१ रुक्मदरी=स्वर्ण कन्दरा । ततर्प=√तृप्+लिट् अन्य पु० ए० व० (प०) ।

४२ आचकर्ष=आ+√कृष्+ लिट् एक व० अन्य पुरुष । तुरन्=तुर्+शतृ ।

४३ उपगत =उप√गम्+क्त तूर्णम्=शीघ्र । अवततार=अव+तृ+लिट् अन्य पु० ए० व० । (प० प०) ललम्बे=√लम्ब्+लिट् अ० पु० ए० व० (आ०)

४४ आपगा=नदी । प्रतिस्रोत=प्रतिकूल धारा । प्लव =नौका ।

४५ क्रम=कदम, पद, डग, प्रचक्रमे=प्र+क्रम्+लिट् अ० पु० ए० व० (आ०), यात =या+क्त ।

४६ विलम्बमान=वि√लम्ब+शानच् । पितृ नगरे=पितु नगरे तत्पु० ।

———